फरवरी 2024

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



पण्डित मदनमोहन मालवीय
सम्पूर्ण वाङ्मय



'पण्डित मदनमोहन मालवीय सम्पूर्ण वाङ्मय' का लोकार्पण करते हुए प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी, साथ में हैं केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण तथा युवा कार्यक्रम और खेल मन्त्री अनुराग सिंह ठाकुर, क़ानून और न्याय राज्यमन्त्री (स्वतन्त्र प्रभार) अर्जुन राम मेघवाल तथा 'सम्पूर्ण वाङ्मय' के प्रधान सम्पादक रामबहादुर राय

अमृतकाल में, राष्ट्र की सेवा में महान योगदान देने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों को उचित मान्यता प्रदान करना प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी का दृष्टिकोण रहा है। 'पण्डित मदनमोहन मालवीय सम्पूर्ण वाङ्मय' इसी दिशा में एक प्रयास है। नई दिल्ली में महामना के जन्मदिवस पर सम्पूर्ण वाङ्मय के 11 खण्डों के विमोचन के अवसर पर प्रधानमन्त्री ने कहा कि महामना जैसे व्यक्तित्व सदियों में एक बार पैदा होते हैं और उनका प्रभाव आने वाली कई पीढ़ियों पर देखा जा सकता है। श्री मोदी ने कहा कि महामना आधुनिक सोच और सनातन संस्कृति के संगम थे। राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देते हुए उनकी एक नज़र वर्तमान चुनौतियों पर और दूसरी नज़र भविष्य के विकास पर थी। प्रधानमन्त्री ने बताया कि महामना ने अपनी पूरी ताक़त के साथ देश की आज़ादी के लिए लड़ाई लड़ी और सबसे कठिन वातावरण में भी सम्भावनाओं के नए बीज बोए। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि महामना के ऐसे कई योगदान लोकार्पित हो रही 'सम्पूर्ण वाङ्मय' के 11 खण्डों के माध्यम से प्रामाणिक रूप से सामने आएँगे। श्री मोदी ने कहा कि महामना को 'भारत रत्न' से सम्मानित करना हमारी सरकार का सौभाग्य रहा है।

और अधिक जानकारी कवर 3 पर पढ़ें...

स्थापित 1945

आजकल

फरवरी, 2024
माघ-फाल्गुन 1945

अनुक्रम

❖ वर्ष : 79 ❖ अंक : 10 ❖ पृष्ठ : 108 ❖ पूर्णांक : 942

आलेख

8 हिन्दी आलोचक कमला प्रसाद की इतिहास दृष्टि — अजेय पाण्डेय

15 पारम्परिक विधाओं का अवलम्बन या अतिक्रमण — संगीता कुमारी

20 कैनवास से बड़ी शख़्सियत कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग — सुधा रानी तैलंग

यत्र-तत्र-अन्यत्र

26 साहित्यकार प्रसारणकर्त्ता : पं. नरेन्द्र शर्मा — लावण्या दीपक शाह

साक्षात्कार

35 मुख्यधारा में माना जाए बालसाहित्य (दिविक रमेश से बातचीत) — अश्विनी कुमार आलोक

कहानी

40 दाग़ — भावना शेखर

दोहे/ कविताएँ/ ग़ज़लें

46 बिखरे मधुर सुगंध — योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'

48 समय के शिलालेख पर — संजय स्वतन्त्र

50 क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ — सुशांत सुप्रिय

51 उसको पता हर बात — संजीव प्रभाकर

वातायन

52 हाथों से झरती रेत (प्रवासी पंजाबी कहानी) रविन्दर सिंह सोढी — अनुवाद : नव संगीत सिंह

58 कार्ल फ्रेडरिक जॉर्ज स्पिटेलर की कविताएँ — अनुवाद : बंशीधर तातेड़

विविध रंग

60 कला और साहित्य का लालित्यपूर्ण सहचर्य — राजेश कुमार मूर्तिकार

स्पर्धा आजकल

65 हिन्दी अनुवाद लेखन में केरल का योगदान — पी. जे . शिवकुमार

79 वर्ष 2023 : पुनर्कथन — रवि रौशन चंचल

बीता कल

83 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' — ई. पी. चैलिशेव

पुस्तक आजकल

02 पण्डित मदनमोहन मालवीय संपूर्ण वाङ्मय

94 ज़िन्दगी का जमा जोड़ — विजया सती

96 स्त्री कविता में आत्मा का राग — मीना बुद्धिराजा

98 रोचकता के पुट से लबरेज़ कहानियाँ — सूर्यकांत शर्मा

100 पुस्तकें मिलीं

103 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — जयसिंह

साहित्यिक गतिविधियाँ

101 रिपोर्ट — बीना गुप्ता/निर्मला डोसी

प्रकाशन प्रायोजन

105 प्रकाशन विभाग के विभिन्न आयोजन

प्रसंगवश

हम भारतवासी वास्तव में धन्य हैं जो हमने इस विविधता से परिपूर्ण देश में जन्म लिया है। जहाँ एक ओर भारत 'अनेकता में एकता' का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है वहीं इसे 'ऋतुओं का देश' भी कहा जाता है। वैसे तो हमारे देश में छह ऋतुएँ हैं लेकिन मुख्य रूप से चार का महत्व अधिक है– वसंत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु और शरद ऋतु। उत्तर भारत तथा समीपवर्ती देशों की छह ऋतुओं में से एक ऋतु है- वसंत, जो फ़रवरी से अप्रैल के मध्य इस क्षेत्र में अपना सौन्दर्य बिखेरती है। यही वह समय है जब प्रकृति अपना रंग बदल रही होती है, जब पौधों पर नई कोंपलें फूटकर निखर रही होती हैं। वसंत हमारी चेतना को खोलता है, रंग भरता है और उल्लास का वातावरण बिखेर कर चहुँदिशा में एक सुहावना समा बाँध जाता है। कवि मन वसंत पर अपनी लेखनी न चलाए, यह तो हो ही नहीं सकता!

'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद ने श्रद्धा को बसंत-दूत के रूप में प्रस्तुत किया है–

'कौन हो तुम बसंत के दूत? विरस पतझड़ में अति सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख तमन में शीतल मन्द बयार।'

सुमित्रानन्दन पन्त के लिए प्रकृति जड़ वस्तु नहीं, सुन्दरता की सजीव देवी बन उनकी सहचरी रही–

'दो वसुधा का यौवनसार, गूँज उठता है जब मधुमास
विधुर उर कैसे मृदु उद्‌गार, कुसुम जब खिल पड़ते सोच्छवास
न जाने सौरस के मिस कौन, संदेशा मुझे भेजता मौन।'

'मैं बनी मधुमास आली' शीर्षक से महादेवी वर्मा अपनी गरिमामयी वेदनाएँ प्रकट करते हुए कहती हैं–

'आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड़, आई री, दृगों में सजनि, कालिन्दी निराली!'

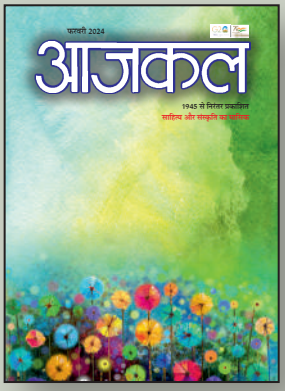
महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म वसंत पंचमी के दिन हुआ था। प्रसाद, पन्त और महादेवी के साथ वे छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक थे। अपनी एक कविता 'ध्वनि' में वे कहते हैं–

'अभी न होगा मेरा अंत

अभी-अभी ही तो आया है मेरे वन में मृदुल वसंत
अभी न होगा मेरा अन्त
हरे-हरे ये पात, डालियाँ, कलियाँ, कोमल गात
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर फेरूँगा निद्रित
कलियों पर जगा एक प्रत्यूष मनोहर
पुष्प-पुष्प से तंद्रालस लालसा खींच लूँगा मैं,
अपने नव-जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मैं,
द्वार दिखा दूँगा फिर उनको
हैं मेरे वे जहाँ अनंत अभी न होगा मेरा अंत।'

'आजकल' के अप्रैल 1962 अंक में निराला पर प्रकाशित आलेख की इस अंक में पुनः प्रस्तुति की जा रही है। कवि, गीतकार एवं प्रसारणकर्त्ता नरेन्द्र शर्मा के जन्मदिवस पर उनकी सुपुत्री लावण्या का आलेख एवं उन पर भगवतीचरण वर्मा द्वारा आजकल जून, 1962 के अंक में प्रकाशित आलेख के अंश भी लिए गए हैं।

जाने-माने कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग की पुण्यतिथि पर उनकी बड़ी बहन ने संस्मरणात्मक आलेख लिखा है। इसके अलावा अन्य महत्वपूर्ण आलेख, स्तम्भ, कहानी, कविता और ग़ज़ल तो दी ही गई हैं। इस वसंत पंचमी हमें भी यह प्रण लेना चाहिए कि हम अपनी इस प्रकृति माँ के संरक्षण की नैतिक ज़िम्मेदारी लेंगे ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इस उत्सव को उसी उल्लास के साथ मनाती रहें और प्रकृति से इंसान के प्रेम का नाता हमेशा जुड़ा रहे।



मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फरहत परवीन

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार
सम्पादक आजकल
प्रकाशन विभाग,
कमरा नं. 601डी, सूचना भवन,
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ
आवरण सज्जा : बिन्दु वर्मा

आजकल वर्ष भर घर मंगाने के लिए स्कैन करें QR कोड

वार्षिक शुल्क ट्रैकिंग सुविधा के साथ ₹434 और सामान्य डाक से मात्र ₹230

आजकल की सदस्यता लेने, पुराने अंक मँगाने, पत्रिका न मिलने की शिकायत या फिर विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें-
फोन - 011-24367453 (सोमवार से शुक्रवार प्रातः 9:30 से 6:00 बजे तक)
अथवा pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या लिखें-
अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार),
पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779,
सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों की सूची पृष्ठ 82 पर

www.publicationsdivision.nic.in
www.facebook.com/publicationsdivision
@DPD_India @dpd_india

पत्र





पत्रिका का पुस्तक रूप

दिसम्बर 2023 अंक प्राप्त हुआ। आद्योपांत पढ़ डाला। पत्रिका ने किताब का रूप धारण कर लिया है। यह अपने आवरण व विषय सामग्री की प्रस्तुति में लाजवाब बन गई है। वर्षभर की प्रमुख साहित्यिक घटनाओं, महत्वपूर्ण पुरस्कारों का संक्षिप्त रेखांकन पत्रिका को न केवल युवा वर्ग के लिए बल्कि अन्य आयु वर्ग के साहित्यानुरागियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है।

महान साहित्यकार धर्मवीर भारती से जुड़ा साक्षात्कार पढ़कर मैं अतीत में खो गया। भारतीजी अपने-से छोटों को पढ़ने-लिखने हेतु प्रोत्साहित करते थे। जब मैं राही मासूम रज़ा पर शोध कार्य कर रहा था तो उन्हें मुम्बई के पते पर एक पत्र लिखा था, जिसमें राहीजी पर कुछ तथ्य जानने की इच्छा व्यक्त की थी, क्योंकि भारतीजी ने राही साहब का मुम्बई के दुर्दीन में साथ दिया था। उन्होंने मुझे हस्तलिखित पत्रोत्तर दिया था।

ज्ञान चन्द्र पाल का साहित्य और सिनेमा से जुड़ा लेख प्रीतिकर है। भारतीय फ़िल्मों से जुड़े सुपरिचित बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न सत्यजित राय पर रणजीत साहा का अनुदित भाव ज्ञानवर्द्धक है। राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी का व्याकरणाचार्य पाणिति पर लेख विशेष गहन अध्ययन का परिणाम है। वेद मित्र शुक्ल का साहित्य के नोबेल पुरस्कार विजेता-2023 से जुड़े नार्वे के जॉन फ़ॉसे पर दिया गया तथ्य सराहनीय है। नीरजा हेमेन्द्र की कहानी संदेश जगाती है। प्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र पर दिए गए लेख के लिए कोटिशः धन्यवाद! विद्वान लेखिका शचीरानी गुर्टू का दो कवियों पर दिया गया विचार प्रशंसनीय है।

-वेद प्रकाश पाण्डेय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

अलग कथ्य की अलग कहानी

नवम्बर, 2023 अंक अपने चिर-परिचित रूप के साथ ही कुछ नवीन स्तम्भ लेकर आया है। अपने नए रूप और आकार में पत्रिका अधिक आकर्षक लगी जिससे इसके लावण्य को विस्तार मिला है।

इस अंक में सभी स्तम्भों की रचनाएँ अपने-आप में महत्वपूर्ण हैं लेकिन कुछ स्तम्भों की रचनाएँ अधिक प्रिय लगीं। जैसे कविताओं में अरुण आदित्य की कविता 'कालीन', मनोरमा गौतम की 'थोड़ी अलग होती हैं', वृंदा पाण्डेय की 'धान रोपती स्त्रियाँ' और खेमकरण सोमन की 'पानी के लिए तरसती नहर' कविता बेहद अच्छी लगीं। 'वातायन' स्तम्भ में लैंग्स्टन ह्यूज की कविताएँ बालकृष्ण काबरा 'एतेश' द्वारा अनुवादित और गूढ़ चिन्तन के साथ सार्थक लगीं। 'पुस्तक आजकल' स्तम्भ में 'स्त्री-जीवन के संघर्ष की कहानियाँ' शीर्षक से शिवजी श्रीवास्तव द्वारा की गई समीक्षा पढ़कर लेखिका अरुण कमल के कहानी-संग्रह 'दहलीज़ के उस पार' को पढ़ने की मन में प्रबल इच्छा जागृत होती है। 'स्पर्धा आजकल' में आलोक श्रीवास्तव

द्वारा प्रस्तुत आलेख 'हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि' से हिन्दी भाषा की प्राचीन और मौजूदा स्थिति को जानने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ। 'साक्षात्कार' स्तम्भ अच्छा लगा। सुप्रसिद्ध लेखिका मन्नु भण्डारी के जीवन के रोचक और महत्वपूर्ण पहलुओं की जानकारी मिली।

सुमन वाजपेयी की कहानी 'वे कुछ क्षण' मन के अंदर गहनता से प्रवेश करती है। बहुत कुछ सोचने-समझने और आत्मविश्लेषण पर विवश करती है। यह एक अलग कथ्य की अलग कहानी है। यह स्त्री मन के सच की, गहराई से खोज करती है। दिव्या के माध्यम से ऐसे सच को सामने लाकर खड़ा करती है जो न जाने कितनी ही स्त्रियों के साथ घटित होता है लेकिन वे अपनी बात नहीं कह पातीं जबकि इंसान बने रहना ही जीवन की पहली शर्त होती है। उसके बाद ही तो हम रिश्तों का सच्चाई और ईमानदारी से निर्वहन कर सकते हैं, न कि रूढ़ मानसिकता में बहकर रिश्तों की आड़ में जबरन किसी की स्वतन्त्रता का हनन करें।

-कुन्तेश दहलान, बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)

चिन्तन योग्य

जनवरी माह में विविध बदलाव के साथ 'आजकल' पत्रिका को पढ़कर मन अभिभूत हो गया। इस अंक में कहानियाँ नए शिल्प का संधान करती हैं और कविताओं की संवेदनशीलता चिन्तन योग्य है। अनुराधा चंदेल 'ओस' और बैजू बावरा की कविताएँ पठनीय हैं।

-शिवनंदन कुमार मिश्रा, पलामू (झारखण्ड)

समान शीर्षक महज़ संयोग होता

हम लोग 'आजकल' पत्रिका के नियमित पाठक हैं। नवम्बर 2023 अंक में 'रूपाकारों की एक अनन्य शृंखला' लेख में अवधेश अमन ने मूर्तिकार पाण्डेय सुरेन्द्र के जीवन परिचय से लेकर उनके साहित्यिक जीवन, पुस्तक-लेखन, कविता एवं काव्य-संग्रह के बारे में जानकारी दी है। लेख रोचक एवं शोधपरक है, लेकिन इसमें एक जगह जाने-अनजाने में तथ्यात्मक त्रुटि दिख रही है। पत्रिका के 67 नम्बर पृष्ठ के अंतिम अनुच्छेद में लिखा गया है कि मूर्तिकार सुरेन्द्र भोजपुरी और हिन्दी के श्रेष्ठ कवि भी हैं जिनका भोजपुरी काव्य-संग्रह 'ई हरनाकुश मन' और हिन्दी काव्य-संग्रह 'फिर पलाश बन लहके' अपने-अपने समय में साहित्य प्रेमियों के बीच चर्चा में रहा है, जबकि 'फिर पलाश बन लहके' काव्य-संग्रह छपरा (सारण) निवासी प्रसिद्ध साहित्यकार, कवि (स्वर्गीय) बच्चू पाण्डेय का हिन्दी काव्य-संग्रह है, जो वर्ष 2020 में ग्रंथरत्नम् प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ था।

-ज्योतिष पाण्डेय, छपरा (बिहार)

*ज्योतिष पाण्डेय द्वारा भेजे गए पत्र के सम्बन्ध में मुझे कहना है कि कवि बच्चू पाण्डेय का काव्य-संग्रह **'फिर पलाश-वन लहके'** है जबकि पाण्डेय सुरेन्द्र का काव्य-संग्रह **'फिर पलाश बन लहके'** है। यदि दोनों कविताओं के काव्य-संग्रह का शीर्षक एक भी होता तो यह महज़ एक संयोग होता।*

-अवधेश अमन, पटना (बिहार)

(लेखक अवधेश अमन ने स्पष्टीकरण के रूप में पाण्डेय सुरेन्द्र की पुस्तक का आवरण भी भेजा है जिससे स्पष्ट है कि दोनों लेखकों की पुस्तक अलग-अलग हैं।)

-'आजकल' टीम

जन्मदिवस पर विशेष

इतिहास में समाज की भूमिका के बीच सामाजिक चेतना एक ऐसा कारक है जो पराएपन या कुंठा की भावना मनुष्य में घर नहीं करने देता है। यह चेतना मनुष्य के भीतर सहजता, रचनात्मकता, स्वतन्त्रता मूल्यों को मौजूद रखती है। इसी के होने से मनुष्य या उसके व्यक्तित्व के होने का संकेत देता है। यदि यह लुप्त हो जाए तो श्रमिक वस्तु या उत्पाद-सा रह जाता है। ऐसे में वह किसी भी निर्णय की स्थिति में नहीं जा पाता है।

हिन्दी आलोचक कमला प्रसाद की इतिहास दृष्टि

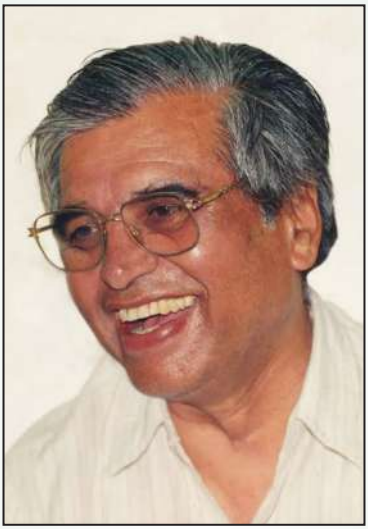


अजेय पाण्डेय
ई-मेल : pandeyajey5@gmail.com

कमला प्रसाद ने समाज और साहित्य के सम्बन्ध को समझने के लिए वैज्ञानिक आधार अपनाया। वैज्ञानिक आधार की समझ विकसित तभी हो सकती है जब इतिहास दृष्टि का विकास हो जाए। हम सभी जानते हैं कि इतिहास के विकास का आधार आर्थिक ढाँचा होता है, जिसके बदलाव के चलते समाज, मानव और उत्पादन के साधनों में भी बदलाव होने लगता है। जब तक सूक्ष्मता से इसकी पड़ताल नहीं करेंगे तब तक किसी भी विषय पर इतिहास दृष्टि विकसित हो पाना असम्भव है। कमला प्रसाद लिखते हैं, "इतिहास के अध्ययन की नई धारा ने जन्म ले लिया है। वह धारा वैज्ञानिक चिन्तन की है। उसकी मूल प्रतिज्ञा है कि कोई घटना या कार्य बिना कारण के नहीं होता। कारण और कार्य का स्थान भौतिक जगत है। इस अवधारणा ने अब तक के मानवीय विकास के लिए उत्तरदायी साक्ष्यों का उपयोग किया है। इसने जाना कि मनुष्य की मूल इच्छा और आवश्यकता भोजन से सम्बद्ध है। भोजन की इच्छा और उसके लिए उत्पादन का क्रमिक विकास समूचे इतिहास की जीवनीशक्ति है। इच्छा और पूर्ति के द्वन्द्व ने ही मानवीय चेतना को विकसित किया है तथा

पूर्ति की पद्धतियों को भी। दोनों की विभिन्न पद्धतियाँ प्रत्यक्ष होती गईं। यही पद्धतियाँ सभ्यता और संस्कृति के मूल में हैं।

समाज की आवश्यकता के कारण उत्पादन और उसके साधन में बदलाव के चलते समाज और विचारधारा भी बदलने लगती है। इसीलिए मार्क्स-एंगेल्स का मत था कि आर्थिक शक्तियाँ ही लोगों का निर्माण करती हैं। सही इतिहास दृष्टि किसी विषय पर यदि डालना है तो उसकी सभ्यता की जड़ तक जाना होगा और उस सभ्यता के प्रगतिशील तत्त्वों को अपनाना होगा क्योंकि उस समय के सिद्धांत, विचार कहीं-न-कहीं आधुनिक दृष्टि या इतिहास दृष्टि को एक जीवनदायिनी शक्ति प्रदान करते हैं।



कमला प्रसाद

यह बात और है कि सदैव के लिए कोई भी सिद्धांत, विचार प्रगतिशील जीवनदायिनी नहीं बने रह सकते। नए सिद्धान्त और विचार जो लोगों के हित में होते हैं, वे पुराने सिद्धान्त, विचार का स्थान ले लेते हैं। दरअसल मनुष्य का स्वतन्त्र रूप से विकासक्रम इतिहासकारों की सबसे बड़ी चिन्ता रही है। कमलाजी लिखते हैं, "इतिहास की विसंगति यह रही है कि श्रमिक मनुष्य ने निर्माण के दौरान जो नतीजे पाए, उन्हें व्यवस्था के संचालकों ने अमूर्त कर दिया। उसके प्रत्येक सगुण नतीजे का दुरुपयोग होने लगा। अनुभव पर उसने ज़ोर दिया तो उसके विरोधी वर्ग ने उसे अनुभववाद बना दिया। आधुनिकता को आधुनिकतावाद, भावना को भावनावाद, आदर्श को आदर्शवाद, लोकवृत्ति को लोकवाद या क्षेत्रवाद, धार्मिक आज़ादी को धार्मिक उन्माद, परम्परा को परम्परावाद और विज्ञान को यन्त्रवाद में बदल दिया गया। विकास के द्वन्द्वात्मक सातत्य के नियमों को स्थिर पद्धति में बदलकर उसमें विकृतियाँ आने दी गईं और फिर जनता को विकृतियों की याद दिलाकर पुरोगामी होने के लिए बाध्य किया गया। इतिहास के ऊपर पुराणों की निरपेक्ष विजय के लिए सुनियोजित षड्यन्त्र चलता रहा और तो और, अब जब वैज्ञानिक दृष्टि और समाजवादी समाज की रचना का मानवीय स्वप्न एक तिहाई संसार में पूरा हो चुका है तब इस रास्ते को भी विकृत करने के प्रयत्न इसी के पक्ष का बाना पहन कर चल रहे हैं। जनतन्त्र और स्वतन्त्रता जैसे शब्दों का अवमूल्यन कर दिया गया है।"

ऐतिहासिक विकासक्रम में आधार के बदलते ही अधिरचना में बदलाव आने लगता है, इसी कारण मूल्य भी बदल जाते हैं। ये प्रक्रियाएँ जब एक साथ चलती हैं तब लोगों के हित में परिवर्तन होता है और

वह परिवर्तन वैचारिक रूप से दूरगामी असर छोड़ता है। कमला प्रसाद उल्लेख करते हैं कि, "फ्राँस की राज्य क्रान्ति के कारण स्वतन्त्रता, समानता और बंधुता तथा रूस की जनक्रान्ति के बाद समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से दुनिया में आधार और अधिरचना के परिवर्तन की सुगबुगाहट एक साथ शुरू हो गई और मूल्यों पर तदनुरूप विमर्श होने लगा। मूल्य का सम्बन्ध आदिम साम्य संघों में मनुष्य की इच्छा और उसके लिए किए गए संघर्ष से था। इच्छा और संघर्ष का परिणाम मूल्य था और क्रम का द्वन्द्वात्मक रिश्ता था। दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। क्रम से परिणाम के काटे जाने के कारण इतिहास में श्रम और मूल्य का रिश्ता दूर-दूर तक छटक गया।

मूल्यों के बदलते परिप्रेक्ष्य में जो चिन्ता एक आलोचक को होनी चाहिए वह चिन्ता कमला प्रसाद में भी दिखती है। इसके सन्दर्भ में उद्धरण देते हुए वे अपनी भी बात कहते हैं, "एंगेल्स ने मानवीय मूल्यों के सापेक्ष आधार तैयार करने के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक 'एंटीडयूहरिंग' में लिखा– वस्तुओं के ऊपर मानव अधिकार का विकास अच्छा ही रहा परन्तु मनुष्य के ऊपर अधिकार दुर्भाग्यपूर्ण बना। यहाँ पर मनुष्य के ऊपर अधिकार आत्मा का था या अवचेतन का– मूल को समाप्त करते हुए कहा कि पूँजीवादी समाज व्यवस्था ने धन को दो ध्रुव में बाँट रखा है– उत्पादन और वितरण। उत्पादन के रूप में धन अच्छी बात है । धन का मनुष्य के ऊपर अधिकार वितरण का काम है जो अब तक जारी है। यह बुरा हुआ। इस तरह पूँजीवाद की उत्पादन दिशा अच्छी है, उसे जारी रहना चाहिए। उसकी वितरण दिशा दूषित है, उसे दूर किया जाना चाहिए। उत्पादन और वितरण को श्रम सापेक्ष बनाने की यह चेष्टा श्रम और फल के टूटे हुए रिश्ते को पुनः जोड़ती है। आत्म और अनात्म का यही स्वाभाविक सम्बन्ध है। सम्बन्धों के इस पुनर्संयोजन और सम्पादन से सामंतवादी पूँजीवादी मूल्यों के अंतर्विरोधों को समाप्त किया जा सका।"

इतिहास में मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण और विघटन, दोनों प्रमाण मिलते हैं। इतिहास में मनुष्य की सक्रियता से उसके व्यक्तित्व निर्माण, उसके विकास तथा पतन के प्रमाण मिलते हैं। कमला प्रसाद लिखते हैं, "व्यक्तित्व के लिए ख़ुद ज़िम्मेदारी उसने सामूहिक कर्म से प्राप्त की है। समूह की एक जीवित इकाई होने के कारण समूह और उसके बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध होते हैं। सम्बन्धों की अविच्छिन्नता में मनुष्य में आपस में दुराव पैदा नहीं होता। बौद्धिक, शारीरिक और आत्मिक अर्जन के लिए समूह और व्यक्ति की धनात्मक सक्रियता गुणात्मक परिणाम में बदलती है। यह जो समूह है इसमें से 'मैं' का उभर कर आना इतिहास के विकास क्रम की महत्वपूर्ण घटना है।"

वे आगे लिखते हैं, 'मैं' के व्यक्तित्व का प्रभाव समूह में धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि समूह उसकी छाया और प्रभाव में जीने लगा। व्यक्तित्व ने व्यक्तिवाद को शासक

के रूप में पूरी तरह जमा दिया। उसने शाश्वत ईश्वर की कल्पना की। जनता को 'मैं' के साथ ईश्वर जैसा व्यवहार करने को बाध्य किया गया, उसने स्वयं अपने द्वारा निर्मित शक्ति (ईश्वर) पर विषयगामी आस्थाएँ व्यक्त कीं। सामंत युग का नीतिशास्त्र, 'मैं' के इसी प्रतिष्ठा के लिए सक्रिय है। कालांतर में पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था ने 'मैं' के साथ जुड़े नाममात्र के बीच सामूहिक मनोभाव को ध्वस्त कर दिया।

गोर्की 'गोर्की ऑन लिटरेचर' पुस्तक में लिखते हैं, "जैसे ही मनुष्यों की संख्या बढ़ी और (खाद्य सामग्री कम पड़ने लगी) क़बीलों में आपसी संघर्ष उठ खड़े हुए। समूह बोध 'हम' की अवधारणा के साथ दूसरे समीपी क़बीलों के लिए 'वे' की अवधारणा का जन्म हुआ। वे और प्रकृति के साथ संघर्ष के लिए समूह में विभिन्न कार्यों का विभाजन करने की ग़रज़ से 'मैं' के व्यक्तित्व का निर्माण किया। वह महाकाव्यात्मक नायक की भाँति उदित हुआ। सामूहिक अनुभवों के सदस्यों में वितरण की विशेषता जन्मी और यही क्षण था जब से सामूहिक शक्ति का विघटन शुरू हुआ।"

इस विकास के क्रम में 'पराएपन/आत्मपराएपन' की अवधारणा पर बहुत कम मार्क्सवादी आलोचक होंगे जिन्होंने बात किए होंगे, परन्तु इस बिन्दु पर कमला प्रसाद ने विस्तार से बात की है। कैसे श्रम के साथ उत्पादन और वितरण का सापेक्षिक सम्बन्ध न होने के कारण उत्पाद से श्रमिक का अपनत्व समाप्त होता चला गया! कैसे श्रमिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही श्रम करने लगा और विरत होता चला गया! कैसे इन्हीं प्रक्रियाओं के मध्य श्रमिक अपनी सर्जनात्मकता और निजता खोते हुए आत्मपराएपन की ओर जा चुका है! इन बिन्दुओं पर बात करते हुए कमला प्रसाद लिखते हैं, "उत्पाद से विरत रहकर भी श्रमिक प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए तथा युग प्रवाह को आगे-आगे ले जाकर आधुनिकता के श्रेष्ठ उत्पादन पद्धति तक पहुँचा। उसने प्रकृति को बदला और इसी द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में खुद बदला किन्तु उसका स्वयं का बदलना बेमन होता रहा। उत्पाद से अपनत्व का अभाव ही कारण था कि निर्माण के साथ वह मुक्त विवेकी, स्वाभाविक और रचनात्मक नहीं रह सका। उसकी क्रिया ज़्यादा शारीरिक रही, कम मनोवैज्ञानिक। अतः मनुष्य स्वतन्त्रता खो बैठा। यह 'स्व' का लोप है। इस स्वतन्त्रता हानि की प्रकृति कुछ दूसरी है क्योंकि यह शोषण और अमानवीयता इतिहास एवं दर्शन से विच्छेद के साथ सम्बद्ध है। स्वतन्त्र देशों, स्वतन्त्र राष्ट्रों, इफ़रात वाली अर्थव्यवस्थाओं, स्वतन्त्र समूहों के बीच भी मनुष्य स्वतन्त्रता को खो बैठा है अर्थात उसकी सहजता, रचनात्मकता से अजनबी होकर अपनी निजता खो बैठा है। यही आत्मपराएपन की धारणा है।"

इतिहास में समाज की भूमिका के बीच सामाजिक चेतना एक ऐसा कारक है जो पराएपन या कुंठा की भावना मनुष्य में घर नहीं करने देता है। यह चेतना मनुष्य

के भीतर सहजता, रचनात्मकता, स्वतन्त्रता मूल्यों को मौजूद रखती है। इसी के होने से मनुष्य या उसके व्यक्तित्व के होने का संकेत देता है। यदि यह लुप्त हो जाए तो श्रमिक वस्तु या उत्पाद-सा रह जाता है। ऐसे में वह किसी भी निर्णय की स्थिति में नहीं जा पाता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति मनुष्य की प्रकृति को अमानवीय बना देती है और श्रमिक को बस एक कल-पुर्ज़ा, न कि मनुष्य। यही व्यवहार आपसी सम्बन्धों को ख़त्म कर देता है। मार्क्स ने 'मार्क्सिज़्म एंड्रॉयड आर्ट' पुस्तक में एक निबन्ध में लिखा है, "व्यक्तिगत सम्पत्ति का आगमन इस सच्चाई की अभिव्यक्ति है कि मनुष्य केवल अपने लिए वस्तुगत तथा दूसरों के लिए विलक्षण और अमानवीय हो जाता है। इसके साथ यह भी कि वह अपने जीवन पर बल देता हुआ अपने जीवन से पराया हो जाता है। उसकी अनुभूतियाँ सच्चाई का क्षरण है। वह अनुभूति परायीकृत सच्चाई है।" वह आगे लिखते हैं, "मनुष्य अपनी समग्र सारवस्तु को अपनी सम्पूर्ण जीवन विधियों जिसे समग्र मनुष्य की तरह कहें, को औचित्य देता है। संसार के साथ अपने प्रत्येक सम्बन्धों– देखना, सुनना, सूँघना, चखना, शारीरिक संवेदना, नोचना, अवलोकना, चाहना, क्रियाकलाप, प्यार करना, संक्षेप में सभी वैयक्तिक अवयव जो कि अपने रूप में सामाजिक जीवन से सम्बद्ध हैं, निर्धारित वस्तुगतता अथवा वस्तुपरकता के निर्धारण होते हैं। वे इस तरह वस्तुगत को औचित्य प्रदान करते हुए वास्तविक सच्चाई को अनुमोदित करते हैं।"

जब इसी प्रकार का व्यक्तित्व मनुष्य में निर्मित होने लगता है, अपने को प्रभुत्वशाली समझने लगता है तब उसे बनाने वाला वर्ग अर्थात् श्रमिक पराएपन की अनुभूति का शिकार हो जाता है। तभी से श्रमिक की अघोषित शत्रुता प्रारम्भ हो जाती है। उत्पादन प्रणाली के साथ उसका मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध ख़त्म-सा हो जाता है। मार्क्स-एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'द होली फ़ैमिली' (मास्को, 1956) में लिखा है, "सम्पत्तिशाली वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग एक ही प्रकार का मानवीय-परायापन प्रस्तुत करते हैं लेकिन पहला सम्पत्तिशाली वर्ग इस आत्मपराएपन में केवल बर्बादी का अनुभव करता है, इसमें उसे अपनी शक्तिहीनता और एक अमानवीय अस्तित्व की यथार्थता दिखाई देती है।"

सम्पत्ति बढ़ाने के लिए जो अधिक उत्पादन की पद्धति अपनाई गई वह मनुष्यता के लिए शत्रुता साबित हुई। उत्पादन की अधिकता, मनुष्य के सुख के लिए न होकर उसका अपना अस्तित्व समाप्त करता चला गया। वस्तुओं और जिंसों की भीड़ में मनुष्य खो गया। वह स्वयं बाज़ार में बिक्री की वस्तु के रूप में उपस्थित हो गया। बाज़ार की चकाचौंध में उसका व्यक्तित्व क्षीण होता चला गया। मनुष्य का अपनापन ही उसके व्यक्तित्व को समृद्ध करता है जो इस पराएपन से बचा पाता है। निष्कर्षतः ऐतिहासिक विश्लेषण के बाद यह स्पष्ट हुआ कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और श्रमिकों के वर्ग विभाजन ने निरंतर मनुष्य के व्यक्तित्व को ऐसा निर्मित किया कि व्यक्ति और समाज के मानवीय सम्बन्ध विच्छिन्न होते गए। वे सच्चाई, अस्तित्व और अनुभूति को महत्वहीन

मानकर असंवेदनशीलता के रूप में परिणत होते गए। इसी बात को लेकर कमला प्रसाद सन्दर्भ देते हैं कि हासर अपनी पुस्तक 'एलियइनेशन ऐज़ द की ऑफ़ मैनरिज़्म' में लिखा है, "पराएपन के विचार का अर्थ है- व्यक्ति का समाज से सम्बन्धच्युत होना, अपने कार्य से संलग्नता का अभाव, अपनी प्रेरणाओं, जीवनस्तरों तथा महत्वाकांक्षाओं में कभी भी संगति की असमर्थता का उदय।"

पराएपन की समस्या वर्ग की व्यवस्था में अलग-अलग तरीक़े की होती है। पूँजीवादी व्यवस्था में एक वर्ग मध्यवर्ग है, जिसके आगे आने और सामाजिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण एक और तीसरा वर्ग भी हो गया। मध्यवर्ग का आत्मपराएपन दोनों वर्गों से कमोबेश बुनियादी अंतर के साथ नज़र आता है। कमला प्रसाद लिखते हैं, "यह वर्ग न श्रम से जुड़ा है और न उत्पाद से। इसीलिए उसका अनुभव संघर्ष और भोग दोनों से विलग है। वह इन वर्गों की दुनिया में प्रवेश करता है तो अपने मूल रूप में नक़ली होता है। वह बार-बार अनुभवों पर ज़ोर देता है। थोड़े ही समय में पाता है कि उस अनुभव में दम नहीं है। इसीलिए वह नए नाम और मुहावरे की खोज करता रहता है। वह अपने को परिभाषित करने के मूल संकट से गुज़रता है। उसके भोगे यथार्थ, सच्ची अनुभूति, प्रामाणिक अनुभव, अभिव्यक्ति का संकट जैसे आंशिक परिभाषित मुहावरे उसका साथ नहीं देते। वह कभी अहं ग्रस्त होता है और कभी आत्महीनता का शिकार । उसमें हीनग्रंथियाँ तरह-तरह की विकृतियाँ पैदा करती हैं। वह मूल्यों की बातें करता हुआ पराएपन का इज़हार करता है।"

वर्ग अपने अनुसार मानव मूल्य तय करने लगते हैं। अपनी इच्छाओं एवं कामनाओं को मूल्यों में मूर्त रूप देने लगते हैं, फिर एक परिवर्तन आने लगता है, वह अपने को स्वाधीन महसूस करता है। इतिहास के वैज्ञानिक विश्लेषण ने आत्मपराएपन के कारणों को प्रकाश में लाया है जिसके अनुसार उनकी दबी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ पहचानी गई हैं। इसी के पहचान के आधार पर एंगेल्स ('एंटी-डयूहरिंग', 1947) की भविष्यवाणी, कि, "मानवता आवश्यकता के राज्य से कूद कर स्वाधीनता के राज्य में चली जाएगी", सही साबित हुई। मनुष्य में निरन्तर स्वाधीनता की भावना का विकास हुआ जिससे रचनात्मक मूल्यों का क्रान्तिकारी विस्तार हुआ। मार्क्सवादी विचारक चे गुएवारा ने पुस्तक 'सलेक्टेड वर्क्स' में क्यूबा की क्रान्ति के सन्दर्भ में कहा था, "यह क्रान्ति मानवता से लैस गुणों के साथ है, दुनिया के हारे हुए लोगों के साथ है। दुनिया के हारे हुए लोगों के साथ यह क्रान्ति एक ख़ास तरह का एकांत महसूस करती है। दरअसल अंतरराष्ट्रीयतावाद आदमियत की सबसे ज़्यादा सच्ची सार्थक जलती हुई और ठोस अभिव्यक्ति है।

आत्मपराएपन की भावना श्रमिकों में न आने पाए, इसके लिए नेतृत्व को भौतिक एवं आत्मिक दोनों सम्भावनाओं की खोज करनी पड़ेगी। बीसवीं शताब्दी में जब अनेक देशों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, मज़दूरों और श्रमिकों के नेतृत्व ने उत्पादन और वितरण के मध्य मनुष्य के

केवल उपभोग की ही नहीं बल्कि भाव एवं संवेदनाओं की भी सम्भावनाएँ तलाशीं। ये सम्भावनाएँ उत्पादन एवं वितरण की द्वन्द्वात्मकता के सहारे ही तलाशी जा सकती हैं। जहाँ पर उसके उपभोग तथा संवेदनाओं की चिन्ता की जाती है, वहाँ परायापन, कुंठा इत्यादि समाप्त हो जाता है। फिर वह मनुष्य आनंद में रहकर उत्पादन तथा रचनात्मकता सक्रियता से निभाता है। वह जो भी उत्पादन करता है उसमें मानव इतिहास की झलक दीखने लगती है। ऐसे में वह समाज, परिवार, नीति, कला, साहित्य, राजनीति एवं अर्थव्यवस्था में पूरी शक्ति के साथ एक नई संस्कृति के रूप में व्यवहार करता है। इसीलिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद बेहतर होता है क्योंकि उसने उत्पादन एवं असमान वितरण तथा अव्यवस्थाओं एवं मनुष्य के भीतर और बाहर की असमानताओं की संगति तलाशी है। उससे मनुष्य के व्यक्तित्व में स्वतन्त्रता तथा रक्षा की अनुभूति होती है और वह लोकहित में सकारात्मक कार्य की ओर अग्रसर होता है, यही उसके सृजनात्मकता का प्रमाण है। व्यक्तित्व जब सकारात्मक रहेगा तो स्वभावतः विचारधारा भी स्वतन्त्र रूप से निर्मित होकर सकारात्मक रहेगी। व्यक्तित्व और विचारधारा एक-दूसरे के पूरक होते हैं।

कमला प्रसाद बक़ौल लूसिया गोल्डमैन की पुस्तक 'द डायलेक्टिक्स ऑफ़ लिबरेशन' से उद्धृत करते हैं, "द्वन्द्वात्मक दर्शन का एक सबसे महत्वपूर्ण विचार यह है कि चिन्तन हमेशा जीवन में नए-से-नए अर्थ की खोज की कोशिश है जो निश्चित स्थितियों में घटित होती है और इन्हीं के अनुरूप मनुष्य के वे आचार निर्धारित होते हैं, जो मानव समूह में आशा के अनुरूप वास्तविकता को बदलते हैं।" इस तरह समाज के आधार-अधिरचना के विकास की प्रक्रिया में मूल्यों की संगति व्यावहारिक प्रमाण के रूप में पेश है। संस्कृति और साहित्य भी उसके घटक हैं। ये घटक मानव इतिहास में जीवन्तता तथा सृजनात्मकता के वाहक बने हुए हैं। इनका सम्बन्ध निरपेक्ष उड़ानों से न होकर रचना विधान से है।

कमला प्रसाद की इसी इतिहास दृष्टि ने रचना और आलोचना के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को सामाजिक सन्दर्भों से जोड़कर देखा। उन्होंने परम्परा एवं मूल्यों के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों की व्याख्या के साथ ऐतिहासिक सन्दर्भों की भी व्याख्या बहुत विस्तार से की। यदि हिन्दी के मार्क्सवादी आलोचकों की पूर्वज पीढ़ी को देखें तो आलोचना में वृहद् इतिहास दृष्टि भले ही रामविलास शर्मा और मुक्तिबोध ने डाली हो परन्तु ऐतिहासिक परम्परा में जो मानवीय मूल्यों के विघटन हुए एवं उनमें आत्मपराएपन तथा कुंठा की भावना विकसित हुई, उस पर चर्चा विस्तार से कमला प्रसाद ही करते हैं। मनुष्य के सामाजिक जीवन की जो समस्याएँ होती हैं, उस पर गम्भीर समाजशास्त्रीय आलोचना की सही समझ भी तब बनती है जब इतिहासबोध हो, इसके द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों की पड़ताल भी तभी सही से हो पाती है। आलोचना मात्र रचना पर बात करना नहीं होता है बल्कि उन पहलुओं की खोज करना है जिन सामाजिक कारकों से वह गहरे रूप में प्रभावित हुई है। यही देख पाना असल इतिहासबोध या इतिहास दृष्टि है। ❑



हिन्दी उपन्यास

पारम्परिक विधाओं का अवलम्बन या अतिक्रमण

उपन्यास समाज की क्रिया-प्रतिक्रिया से उपजने वाली विधा है लेकिन यह महज़ सामाजिक दस्तावेज़ नहीं है। इसमें व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व के साथ-साथ लेखक की कल्पनाशीलता, उसके अनुभव, तत्कालीन परिवेश, उसकी विचारधाराएँ, उसकी रचनाधर्मिता, सभी तत्त्वों का समावेश है।



संगीता कुमारी
ई-मेल : sangitakumarijnu@gmail.com

कथा-उपन्यास सीधे पश्चिम से आया या इसके उद्भव में भारतीय पारम्परिक साहित्य की भी कोई भूमिका रही है? भारतीय साहित्यिक परम्परा की बात करें तब यह मुख्य रूप से 'पद्य' विधा के रूप में था जो 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' में बँटा था। 'महाकाव्य' की लोकप्रियता शिखर पर थी, वहीं दरबारी वातावरण के कारण मुक्तक का अपना स्थान था लेकिन इसका यह अर्थ क़तई नहीं कि भारत में गद्य की कोई परम्परा थी ही नहीं। प्राचीन काल में संस्कृत में 'आख्यायिकाएँ' लिखी जाती थीं। बाणभट्ट ने सातवीं सदी में संस्कृत में 'कादम्बरी' लिखी थी। इसके अलावा फ़ारसी और उर्दू में भी साहस, वीरता और चतुराई के क़िस्सों की लम्बी परम्परा थी जिसे 'दास्तान' कहा जाता था।

इस सन्दर्भ में मधुरेश का मत उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं, "अपनी प्रकृति और लक्ष्य की दृष्टि से उपन्यास भारत में ब्रिटिश सम्पर्क का ही सीधा परिणाम था। भारतीय आख्यान-परम्परा तो हमारे पास सैकड़ों वर्षों से थी। रामविलास शर्मा के लिए 'हितोपदेश', 'कथासरित्सागर',

'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', आदि के होते हुए कहानी के पश्चिम से आने की बात स्वीकारना भले ही यूरोप की भक्ति का परिणाम हो, लेकिन सच्चाई यही है कि हिन्दी उपन्यास पर इस भारतीय आख्यान-परम्परा का कोई प्रभाव देखना उपनिवेशवाद के उत्साहपूर्ण विरोध का ही परिणाम है।"
मधुरेश, 'हिन्दी उपन्यास का विकास'

'एपिक', 'आख्यायिका', 'दँतकथा', 'लोककथाएँ', 'क़िस्से-कहानियाँ' ऊपर से देखने पर लगता है कि उपन्यास इन्हीं प्राचीन कथात्मक शैलियों का आधुनिक और परिष्कृत उत्पत्ति है। इस भ्रम का कारण शायद यह है कि उपन्यास और इन कथात्मक शैलियों में यदि एक चीज़ समान रहती है तो वह है कहानी। यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि यह सभी कथात्मक विधाएँ कहानी सुनाने का माध्यम हैं लेकिन क्या उपन्यास सिर्फ़ क़िस्से-कहानी को व्यक्त करने वाली विधा है, और अगर यह कहानी तक ही सीमित है तो फिर उपन्यास की ज़रूरत ही क्यों पड़ी? गोपाल राय के अनुसार, "उपन्यास को सामान्य कथा से अलग करने वाला प्रमुख तत्त्व 'यथार्थ' के प्रति आग्रह है, जो कथा के कल्पित संसार, कथ्य और भाषा में दिखाई देता है। अनेक आलोचकों ने इस यथार्थवादी आग्रह को 'उपन्यास का प्रभेदक तत्त्व' माना है। अंग्रेज़ी के नॉवेल पद में 'नए पन' का एक अर्थ भी निहित है, जो यद्यपि हिन्दी या बांग्ला के उपन्यास पद में नहीं मिलता पर उपन्यास को सामान्य कथा से भिन्न करने वाला यह भी एक मुख्य तत्त्व है। इस प्रकार यदि हम उपन्यास को उसकी अल्पतम माँग के साथ परिभाषित करने का प्रयास करें तो कह सकते हैं कि उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्यकथा है जो पाठक को एक काल्पनिक पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।" (*गोपाल राय, 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास'*) यहाँ यह तो स्पष्ट है कि उपन्यास एक नवीन विधा है चाहे वह पश्चिम के सन्दर्भ में हो या भारतीय सन्दर्भ में लेकिन महत्वपूर्ण यह भी है कि वह यथार्थ कैसा है? वह हमारे समाज का यथार्थ है या ज्यों-का-त्यों पश्चिम से उठाया गया यथार्थ है? हिन्दी में इस समय (19वीं सदी) के महत्वपूर्ण उपन्यास वे थे जो सामाजिक सुधारों के मुद्दे से जुड़े थे। 'परीक्षा गुरु' (लाला श्रीनिवास दास), 'सौ अजान एक सुजान' (बालकृष्ण भट्ट), 'नूतन ब्रह्मचारी' (बालकृष्ण भट्ट), 'विधवा विपत्ति' (राधाचरण गोस्वामी), 'आदर्श दम्पत्ति' (लज्जाराम शर्मा) आदि ऐसे ही उपन्यास थे। इस तरह इस समय की अधिकांश रचनाएँ सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करने की दृष्टि से लिखी गई थीं और शायद यही कारण है कि स्त्री समस्या से जुड़े सवाल शुरू से कथा के केन्द्र में रहे हैं। भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। धार्मिक रूढ़ियों से जकड़ी महिलाओं को अपनी शोचनीय स्थिति का भान नहीं था। उन्हें लगता था कि उनका जन्म दुख भोगने के लिए ही हुआ है। पण्डित गौरी दत्त की 'देवरानी जेठानी की कहानी' हो या प्रेमचन्द की 'सेवासदन', इन्होंने स्त्रियों की दशा पर पहले विचार किया। यह अनायास नहीं है कि उपन्यास में या कहानी में शुरू से ही महिलाओं की उपस्थिति रही है। सिर्फ़ भारत ही नहीं विश्व के अधिकांश देशों में मध्यकाल तक स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी।

यूरोपीय देशों में जहाँ शहरीकरण के प्रभाव, टूटते हुए पारिवारिक मूल्य एवं नैतिक मानदंड ने स्त्रियों के महत्व पर विचार करने के लिए विवश किया वहीं 'भारत' जैसे देश में ग़ुलामी से मुक्ति के लिए देश की लगभग आधी आबादी के रूप में महिलाओं की संख्या की अवहेलना ने उस समय के सामाजिक-धार्मिक सुधारकों और गाँधीजी जैसे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकृष्ट कराया। गाँधीजी की अहिंसा, त्याग और सहिष्णुता जैसे मूल्यों के क्रियान्वयन में जो सहयोग महिलाओं से मिल सकता था वह उस स्तर पर पुरुषों से नहीं।

सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-31) में महिलाओं की व्यापक भागीदारी और उसकी सफलता इसका उदाहरण है। उपन्यास ने सर्वप्रथम फ्राँस और इंग्लैंड में अपनी जड़ें जमाई। औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ अर्थव्यवस्था को मज़बूत किया वहीं श्रमिकों की समस्याएँ, मशीनों की बढ़ती संख्या, प्रदूषण आदि ने उस समय के लेखकों को इन विषयों पर लिखने के लिए बाध्य किया। चार्ल्स डिकेंस (1812-1870) की 'ओलिवर स्विस्ट' (1838) औद्योगीकरण के कारण शहरी जीवन की दुर्दशा पर केन्द्रित है। एमिल जोला का 'जर्मिनल' (1885) खदान मज़दूरों की शोचनीय स्थिति पर आधारित है। यही नहीं टॉमस हार्डी ने इंग्लैंड में देहाती समुदायों की विलुप्त हो रही स्थिति पर लिखा है। स्पष्टतः स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएँ हिन्दी उपन्यास के साथ-साथ पश्चिम की अन्य भाषाओं के उपन्यासों के भी केन्द्र में रहे हैं। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति के शुरुआती दौर में स्त्रियों ने जो ज़्यादती झेली वह वहाँ की रचनाओं का मुख्य विषय रहा। टॉल्सटॉय कि 'अन्ना कैरेनिना' (1878) में लेखक ने एक ऐसे स्त्री पात्र को गढ़ा है जो न सिर्फ़ स्त्री जीवन को जीवन्तता प्रदान करती है बल्कि उस समय के नैतिक मानदंडों पर प्रश्नचिन्ह खड़े करती है। अन्ना कैरेनिना का विवाह के बाद प्रेम और अंत में आत्महत्या उसके द्वारा पश्चाताप नहीं है बल्कि वह तत्कालीन समाज की विद्रूपताओं को उजागर करता है । दरअसल यहाँ अन्ना कैरेनिना की आत्महत्या सामाजिक व्यवस्था पर सवाल है।

अतः उपन्यास समाज की क्रिया-प्रतिक्रिया से उपजने वाली विधा है लेकिन यह महज़ सामाजिक दस्तावेज़ नहीं है। इसमें व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व के साथ-साथ लेखक की कल्पनाशीलता उसके अनुभव, तत्कालीन परिवेश, उसकी विचारधाराएँ, उसकी रचनाधर्मिता, सभी तत्त्वों का समावेश है। शुरुआती दौर के उपन्यास में जहाँ समाज केन्द्र में है वहीं बाद के कालों में व्यक्ति और उसके बाद व्यक्ति भी अपने मानसिक द्वन्द्वों और भावबोधों से लड़ता नज़र आता है। जहाँ मध्यकालीन चिन्तन में आस्था का स्वर प्रबल था वही आधुनिक चिन्तन तर्क और बौद्धिकता पर केन्द्रित हो गया।

उपन्यास एक अलग फ़ॉर्म है और इसलिए इसे लेकर इतने विवाद भी हैं, उलझनें भी हैं। उपन्यास परम्परागत ढाँचे को तोड़कर कथात्मक (नैरेटिव) विधा का अन्वेषण है। उपन्यास तर्कशील, आत्मसजग चेतना, विचारों और विश्वासों द्वारा नहीं बल्कि स्मृति और सांस्कृतिक अनुभवों में साँस लेता है। ऐसे में उपन्यास के 'फ़ॉर्म' को सिर्फ़ आयातित करना या उसका निर्माण करना नहीं है, बल्कि उसका सृजन करना भी है। सृजनात्मकता अनुभव से प्राप्त होगा एवं यह अनुभव

बहुत हद तक आपकी तर्कशीलता, आपके आत्मसजग विचार और आपकी स्मृतियों से प्रभावित होंगे।

निर्मल वर्मा के अनुसार, "अनुभव का 'कॉन्टेंट' चाहे जैसा हो, महत्व इस चीज़ का है कि वह चेतना के किस धरातल और रूप में एक व्यक्ति से जुड़ता है। उदाहरण के तौर पर मनुष्य का अतीत एक सार्वभौमिक अनुभव है, पश्चिम में वैसा ही जैसा भारत में किन्तु व्यक्ति और अतीत के बीच एक विशिष्ट जुड़ाव, एक सांस्कृतिक सम्बन्ध जिससे स्मृति का जन्म होता है- यह इतिहास का विषय नहीं, संस्कृति का प्रश्न है। आश्चर्य नहीं, एक भारतीय उपन्यासकार इस प्रश्न के दबाव को बहुत तीव्रता से महसूस करे, एक कवि से कहीं अधिक, क्योंकि उपन्यास की कथात्मक गति सीधे समय और कृति के साथ जुड़ी है। आश्चर्य यही है कि उपन्यास ही वह क्षेत्र है, जहाँ हमने इस दबाव की सबसे अधिक अवहेलना की है। भारत में अनेक उपन्यास लिखे गए हैं, हर साल लिखे जाते हैं- मनोवैज्ञानिक उपन्यास, यथार्थवादी उपन्यास, आँचलिक उपन्यास लेकिन स्वयं 'उपन्यास' की समस्या पर विचार, उसके जातीय फ़ॉर्म का अन्वेषण, हमने नहीं के बराबर किया है।" *(निर्मल वर्मा, 'शताब्दी के डलते वर्षों में')*

यह चिन्तनीय है कि भारतीय साहित्य में उपन्यास अपने उद्भव के साथ ही एक अदृश्य तकलीफ़ से भी गुज़रता रहा है। उपन्यास के उद्भव की जितनी दलीलें दी जाएँ परन्तु यह एक सच है कि जब किसी विधा पर पश्चिम का प्रभाव ज़्यादा हो और वह अपने को उस स्तर पर स्थापित नहीं कर पाए जिस स्तर पर उसे होना चाहिए तब ऐसे में उस विधा की पीड़ा और द्वन्द्व उसे लक्ष्यहीनता की ओर जाने पर विवश कर सकती है। यह ख़तरा सिर्फ़ विधा के स्तर पर नहीं है बल्कि साहित्य जगत में आलोचना के मानदंडों पर भी प्रश्नचिह्न खड़े करती है। ऐसे में उपन्यास को सिर्फ़ पश्चिम से आयातित समझना भूल होगा। हमारे जीवन का यथार्थ और अनुभव पश्चिम से भिन्न है।

कोई भी विधा पूरी तरह मरती नहीं बेशक उसका स्वरूप बदल जाए। इसलिए सम्पूर्ण रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि महाकाव्य का प्रभाव उपन्यास पर है ही नहीं। चाहे पश्चिमी उपन्यास हो या हिन्दी उपन्यास, उपन्यास की प्रसिद्धि का मानदंड महाकाव्य है। चाहे स्थिति जो भी हो, उपन्यास में कहानी कैसे कही जाए, यह जब तक पारम्परिक विधाओं ने ही हल किया है, ऐसे में उपन्यास को महाकाव्य का अगला चरण मानने की जगह इसे समय-सापेक्ष मानना ज़्यादा तर्कसंगत है क्योंकि उपन्यास पहली ऐसी विधा है जिसने न सिर्फ़ अपनी सृजनात्मकता में व्यक्ति को केन्द्र में रखा बल्कि जिस सत्य को उसने जैसा महसूस किया, उसे उसी रूप में प्रकट किया। समाज में क्या होना चाहिए? से बढ़कर क्या है? और क्या घट रहा है? उसे कथा के केन्द्र में लाया। शायद यही वजह है कि बेशक शुरुआती हिन्दी उपन्यास में समाज और सामाजिक यथार्थ आदि को वरीयता दी गई परन्तु धीरे-धीरे इसने अपने स्वरूप को बदला और इन सबसे आगे निकल गया।

महत्वपूर्ण है कि यूरोपीय परिप्रेक्ष्य में उपन्यास बेशक पूँजीवादी समाज की उपज हो सकती है परन्तु भारतीय सन्दर्भों में स्थिति भिन्न है। भारत में औद्योगीकरण किसी क्रमबद्ध कड़ी के रूप में नहीं आया। भारतीय समाज में आज भी सामंतवादी समाज, पूँजीवादी

आधुनिक समाज, ग्रामीण समाज, आदिवासी समाज आदि सभी का सह-अस्तित्व एक साथ देखा जा सकता है। इसलिए यहाँ उपन्यास के शुरुआती विषय भी ज़्यादातर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर रहे जो अपेक्षित भी था। यहाँ उपन्यास ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में 19वीं सदी के तत्कालीन स्वाधीनता संघर्ष जैसे राष्ट्रीय सवालों से स्वयं को जोड़ा और न सिर्फ़ अपने को पल्लवित करता रहा वरन भारतीय जनमानस के मन में आज़ादी के भाव को जगाने और उसके प्रसार में मददगार भी साबित हुआ। मोटे तौर पर 'उपन्यास' या 'गद्य' विधा की व्यवस्थित शुरुआत प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष (1857) से लेकर कांग्रेस की स्थापना (1885) तक है। यह भारतीय इतिहास के लिए काफ़ी महत्वपूर्ण समय है, साथ ही संक्रमणकालीन भी।

दरअसल इन अर्थों में यह कहा जा सकता है कि 'उपन्यास' के उदय की कोई निश्चित व्याख्या नहीं है।

अलग-अलग क्षेत्र, वातावरण और परिस्थितियों में 'उपन्यास' विधा अलग-अलग रूप में विकसित हुई। यूरोप में औद्योगीकरण जबरन नहीं लाया गया था बल्कि उसने सामंतवादी ढाँचे को तोड़कर अपना रास्ता तैयार किया था जबकि उसके उपनिवेश जैसे भारत में स्थिति भिन्न थी। साधारणतः उपन्यास को सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणवादी, आँचलिक, समकालीन, आदि श्रेणी में विभाजित कर देते हैं, बिना यह समझे कि उपन्यास केवल 'प्लॉट' के आधार पर व्याख्यायित करने वाली विधा नहीं है। यहाँ महत्वपूर्ण है कि कई बार हम चीज़ों को या तो परम्परा में ढूँढने की कोशिश करते हैं या पश्चिम से आयातित समझकर पाश्चात्य तत्त्वों के आधार पर उसकी परिभाषा गढ़ते हैं, जबकि ज़रूरत होती है उसे तत्कालीन परिवेश में उसके घटकों के तलाश की।

सामान्यतः किसी भी भाषा के साहित्यिक विधा की परिपाटी का हम सतही अवलोकन करते हैं। कोई भी विधा जब आयातित हो तो उसे पहचान की संकट से भी गुज़रना पड़ता है। हिन्दी साहित्य के लिए यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि इसे अपने प्रारम्भिक चरणों से ही भाषा के स्तर पर भी संघर्षरत रहना पड़ा है और विधा के स्तर पर भी। यह स्थिति यूरोपीय साहित्य की नहीं रही क्योंकि यूरोपीय भाषाएँ बेशक भिन्न हों परन्तु उनकी मानसिक संवेदनाएँ कमोबेश एक-सी हैं। इसलिए यूरोपीय उपन्यास चाहे वह अंग्रेज़ी में, फ्रेंच में, स्पेनिश में या जर्मन भाषा में हो, वह विधा और संवेदना के स्तर पर समान है। इसके पीछे का ठोस कारण है इन देशों के इतिहास, धर्म और सांस्कृतिक इयत्ता जो बहुत कुछ एक जैसी है परन्तु भारतीय सन्दर्भ में यह स्थिति अलग है। हमारे यहाँ जीवन जीने की शैली, हमारी अनुभव सम्पदा, सांस्कृतिक परम्परा आदि पश्चिम की तरह नहीं है। भारतीय साहित्य में उपन्यास विधा की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि यह अपनी उत्पत्ति के साथ ही अपने अवसान के ख़तरे से भी जूझता रहा है। यह उसे लक्ष्यहीनता की ओर ले जाने को विवश करती है। यदि उपन्यास विधा को भारतीय साहित्यक सन्दर्भों में जीवित रखना है तब ऐसे में इसे इसके स्थानीय ढाँचे में ढालना होगा। ❑



कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग को श्रद्धांजलि

कैनवास से बड़ी शख़्सियत

जाने-माने कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग की इस माह जयंती एवं पुण्य तिथि है। संस्कृत प्राध्यापक और साहित्यकार सुधा रानी तैलंग ने अपने छोटे भ्राता और कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग के बचपन की यादों से लेकर परिपक्व कार्टूनिस्ट बनने तक के सफ़र को इस संस्मरणात्मक आलेख में प्रस्तुत किया है।

रंगों और कूचियों से अपने हुनर को अनूठे आयाम देते हुए राजस्थान के बीकानेर से मुम्बई जैसे महानगर में मात्र बाइस साल की उम्र में रुख़ करने वाले सुधीर तैलंग के बारे में किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि आगे जाकर ये ही लड़का देश-विदेश में कार्टून कला के साथ फ़िल्म निर्माण व पत्रकारिता में अपनी पहचान बनाएगा।

विश्व के कला मानचित्र में बीकानेर का नाम चस्पा करने वाले कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग का जन्म 26 फरवरी, 1960 को राजस्थान के बीकानेर में एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। पिता कृष्ण तैलंग की घर में प्रिंटिंग प्रेस थी और दादाजी पं. गोविन्द लालजी गोस्वामी ध्रुपद व हवेली संगीत के प्रसिद्ध गायक थे। ऐसे में सुधीर को बचपन से ही साहित्यिक व सांस्कृतिक माहौल मिला। बचपन में बालक सुधीर खिलौनों की जगह चॉक, काग़ज़, पेन्सिल, ब्रश और रंगों से खेलता था। महज़ तीन-चार साल की उम्र में ही सुधीर ने पेंसिल, चॉक से घर की दीवारों, फ़र्श के साथ-साथ कॉपी, काग़ज़ों पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ बनाना शुरू कर दिया। पाँच-छह साल की उम्र में सुधीर की आड़ी-तिरछी रेखाओं ने आकार लेना शुरू कर दिया। उस दौर



सुधा रानी तैलंग
ई-मेल : sudhatailang76@gmail.com

में कॉमिक्स का जादू बच्चों पर ज़ोरों से था। ऐसे में सुधीर भी अपनी जेब ख़र्च के पैसों से कॉमिक्स ख़रीदता। वह टिनटिन, ब्लान्डी और फ़ैंटम से काफ़ी प्रभावित था। यहीं से उसमें कार्टून बनाने की शुरुआत हुई।

घर में ही प्रिंटिंग प्रेस होने के कारण काग़ज़ों व पत्र-पत्रिकाओं का अम्बार लगा रहता था। सुधीर के लिए कार्टून की पाठशाला उनके बाबूजी की प्रिंटिंग प्रेस ही थी। सुधीर के कार्टून के प्रति बढ़ते शौक को देखकर उनके बाबूजी कलकत्ता से कार्टून के ब्लॉक, कैटलॉग मँगवाने के साथ-साथ मुम्बई की फ़र्म चोक्सी एण्ड कम्पनी से आर्ट मटेरियल, ड्राइंग शीट, विंसर एण्ड न्यूटन की काली इंडियन इंक, हर तरह की निबें, ब्रश और पिनें मँगाते थे।



तत्कालीन राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम से पद्मश्री सम्मान लेते हुए सुधीर तैलंग

बाबूजी और दादाजी सुधीर को पेंसिल की जगह निब, कलम, स्याही और ब्रश का प्रयोग करना सिखाते। धीरे-धीरे सुधीर के कार्टून के शौक ने जुनून का रूप ले लिया। सुधीर क्लास में बैठे-बैठे कभी कॉपी के पन्नों में, तो कभी ब्लैक बोर्ड पर कार्टून बनाया करते पर उनके अध्यापक बालक सुधीर को कभी डाँटते नहीं थे बल्कि हमेशा प्रोत्साहित ही करते थे। सुधीर ने कार्टून बनाने का कोई प्रशिक्षण नहीं लिया। उनमें कला की बानगी बचपन से ही सामने आने लगी थी।

1970 में जब सुधीर मात्र दस साल के थे तब उनका पहला कार्टून राष्ट्रीय समाचार पत्र 'दैनिक हिन्दुस्तान' में छपा तो पूरे परिवार, स्कूल व मोहल्ले में एक उत्सव का माहौल बन गया। पहली बार अपना नाम और सिगनेचर देखकर बालक सुधीर को बेहद ख़ुशी हुई। दो सप्ताह में लगातार सुधीर के पाँच कार्टून छपे। क़रीब दो महीने बाद पच्चीस रुपये का मनी आर्डर आया। सत्तर के दशक में एक छोटे-से बच्चे के लिए पच्चीस रुपये बहुत बड़ी रक़म थी। तब सुधीर ने एक धूप का चश्मा खरीदा।

बचपन में सुधीर के पास एक प्रोजेक्टर मशीन थी जो उन्होंने अपने बाबूजी के साथ मिलकर बनाई थी जिसमें फ़िल्मों की रील के टुकड़े लगाकर वे अपने हाथ से चलाते। घर की दीवार पर्दे का काम करती और आवाज़ देने का काम वो ख़ुद ही पूरा करते। बच्चों की टोली बैठकर फ़िल्मों का आनंद लेती। सुधीर को टॉकीज़ के प्राजेक्टर रूम में बैठकर फ़िल्में देखने का बेहद शौक था। बाबूजी की प्रिन्टिंग प्रेस में सभी टॉकीज़ों के टिकट छपते थे। ऐसे में बिना टिकट आराम से सुधीर टॉकीज़ में जाकर फ़िल्म देखते। कॉमेडी फ़िल्में उन्हें अच्छी लगती थीं। किशोर कुमार और

राजेन्द्र कुमार उनके पसन्दीदा कलाकार थे। बचपन में बालक सुधीर कई बार सोचा करते थे कि बड़े होकर तो थिएटर का गेटकीपर ही बनना चाहिए। पूरे दिन बिना टिकट के मज़े से फ़िल्में देखो। ये रोचक वाकया सुधीर अक्सर मज़ाकिया अंदाज़ में अपने हर साक्षात्कार में सुनाया करते थे।

बचपन से ही सुधीर में ज़बरदस्त सेंस ऑफ़ ह्यूमर था। एक बार सुधीर ने कार्टूनिस्ट आबिद सुरती को पत्र लिखा कि आपके सभी कार्टून प्रोफ़ाइल में क्यों होते हैं? सभी कार्टूनों में पूरा फ़ेस क्यों नहीं दिखता?

पत्र का उत्तर आबिद सुरती ने दिया और उसके बाद से ढब्बूजी का चेहरा पूरा बनाना शुरू कर दिया। सुधीर की ज़बरदस्त 'सेंस ऑफ़ ह्यूमर' को दर्शाने वाली इस घटना का ज़िक्र आज भी आबिदजी करते हैं।

जीवविज्ञान विषय में बी.एस-सी. और अंग्रेज़ी में एम.ए. करने के बाद सुधीर ने 1982 में मुम्बई में अपने कैरियर की शुरुआत 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया ग्रुप' में ट्रेनी कार्टूनिस्ट के रूप में की। 'इलेस्ट्रेटेड वीकली', 'नवभारत टाइम्स', 'इण्डियन एक्सप्रेस' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के बाद सुधीर 'द एशियन एज' एण्ड 'डेक्कन क्रॉनिकल' से जुड़ गए। हिन्दी से अंग्रेज़ी पत्रकारिता में सुधीर ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। वे अख़बार के अलावा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और संचार के कई माध्यमों में सक्रिय रहते थे। टी.वी. वाद-विवाद कार्यक्रमों में भी हमेशा दिखाई देते थे। कोई भी बहस का मुद्दा हो, चुनाव का नतीजा या विश्लेषण हो सुधीर खुलकर बोलते थे।

सुधीर तैलंग कार्टून को विरोध जताने का सबसे शालीन, शान्तिपूर्ण तरीक़ा मानते थे। उन्होंने शालीनता के साथ तीन दशकों से भी अधिक समय तक हर बड़ी पार्टी के राजनेताओं के कार्टून बनाए। कार्टूनों से पाठक के मन में गुदगुदी और प्रश्न पैदा करने वाले सुधीर का मानना था कि कार्टून उनके लिए ऑक्सीजन है। जब तक वो साँस लेते रहेंगे तब तक कार्टून बनाते रहेंगे। अख़बार के लिए कार्टून बनाना लाइव टेलिकास्ट की तरह होता है क्योंकि कार्टून बनने के बाद उसमें सुधार की कोई गुंजाइश नहीं रहती।

कार्टून बनाने में आठ से दस घंटे का समय देने वाले सुधीर का मानना था कि अधिकांश समय नए विचार तय करने में लगता है। सुधीर अपने पेशे का बहुत सम्मान करते थे।

कार्टून बनाने के साथ-साथ सुधीर अनेक सामाजिक और कल्याण के कार्यों से जुड़े रहते थे। सन् 1984 में भोपाल गैस पीड़ितों की सहायता के लिए सुधीर ने दिल्ली के पब्लिक प्लेस में खड़े होकर लोगों के लाइव कैरीकेचर, स्कैच बनाने से मिली राशि को नागरिक राहत एवं पुनर्वास कमेटी को दिया। इतना ही नहीं, राजस्थान में भीषण अकाल के दौरान उन्होंने अपने कैरीकेचर्स की नीलामी करके एक लाख



काम के कुछ क्षण

रुपये की राशि जुटाई और सूखा पीड़ितों को दी। कारगिल शहीदों के लिए भी सुधीर तैलंग ने अपनी कला का प्रयोग कर राशि एकत्रित की और क्रिकेट खिलाड़ी कपिल देव के सात फ़ीट लम्बे कैरीकेचर नीलामी से प्राप्त हुई 70,000 रुपयों की राशि बच्चों की एक संस्था को दान में दी। सुधीर समय निकाल कर कार्टून, स्केच बनाकर और फ़ैशन शो में मॉडलिंग के ज़रिए जो पैसे आते, उससे चैरिटी संस्थाओं की मदद करते रहे। सुधीर के ब्रश की धार से जब कार्टून निकले तो वे हमेशा चर्चा का विषय बने। उनके कार्टून राजनीति से प्रेरित होने के बावजूद भी हमेशा आमजन की समस्याओं से जुड़े होते थे।

सुधीर तैलंग एक कार्टूनिस्ट के साथ-साथ अच्छे गायक भी थे। दादाजी पण्डित कोटि महाराज से संगीत की विरासत को सम्भालते हुए सुधीर तैलंग को मोहम्मद रफ़ी के गीतों के साथ राजस्थानी लोकगीतों में माँड गीत 'केसरिया बालम आओ नी पधारो म्हारे देश...' बेहद पसन्द था। ज़ी टीवी में अन्नू कपूर के होली स्पेशल अंताक्षरी प्रोग्राम में सुधीर अपना रंग जमा चुके हैं।

सुधीर ने कभी अपने-आपको एक विधा में बाँध कर नहीं रखा। वह कार्टून के अलावा टी.वी. कार्यक्रमों और किताबों के लिए भी पहचाने जाते रहे हैं। उन्होंने बच्चों के लिए कुछ चित्र कथाएँ भी बनाई हैं। उनमें से प्रमुख हैं 'जिम जादूगर व हाथी के दाँत', 'मामा-भाँजा' और 'जातक कथाएँ', 'लम्बू मोटू व नीलगढ़ी का ख़ज़ाना', 'जादूगर जिम' और 'अंतरिक्ष में जीवन'।

फ़िल्मी माध्यम के जादू ने उन्हें बचपन से ही प्रेरित किया। सुधीर कहते थे कि सिनेमा की गंध उनका हमेशा पीछा करती है। कार्टूनिंग अपने-आप में एक

लघु स्थिर सिनेमा ही है। हरेक कार्टून का एक प्लॉट, एक कहानी, एक कैमरा कोण, अभिनेता, पटकथा, संवाद होता है। एक कार्टून शब्दों से नहीं बल्कि विज़ुअल्स की मदद से सोचता है। कार्टून बनाने के अलावा सुधीर ने दूरदर्शन के नेशनल चैनल के लिए वृत्तचित्र, 10 एनीमेशन फ़िल्में और कई टी.वी. शो का निमार्ण किया। अपने चुटीले व्यंग्यात्मक कार्टूनों के ज़रिए पूरे देश में अपनी पहचान बनाने वाले सुधीर तैलंग के कार्टूनों के संग्रह की छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- 'द वर्ल्ड ऑफ़ सुधीर तैलंग', 'बिग कार्टून्स', 'हियर एण्ड नाउ', 'क्रिक्रेट हियर एण्ड नाउ', 'नो प्राइम मिनिस्टर', 'इण्डिया फ़ॉर सेल'। उनके निधन के बाद उनकी पत्नी विभा तैलंग ने 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित उनके कार्टूनों का संकलन 'सुधीर तैलंग के तीर' प्रशंसकों के बीच प्रस्तुत किया है।

सुधीर तैलंग के कार्टूनों की प्रथम एकल कार्टून प्रदर्शनी मात्र 16 वर्ष की उम्र में सन् 1976 में जयपुर में आयोजित हुई थी, दूसरी एकल प्रदर्शनी सन् 1980 में बीकानेर में, तीसरी एकल प्रदर्शनी 1986 में त्रिवेणी कला संगम, नई दिल्ली में एवं 1997, 1999 व 2002 में त्रिवेणी कला संगम नई दिल्ली में आयोजित की गई। लन्दन, फ्राँस और जर्मनी में सुधीर के कार्टूनों की प्रदर्शनी बेहद सराही गई। कार्टूनों की अंतिम प्रदर्शनी 2 नवम्बर, 2014 में हेबीटेट सेन्टर, नई दिल्ली में आयोजित की गई।

कार्टून कला में अभूतपूर्व योगदान के लिए 2004 में भारत सरकार ने सुधीर तैलंग को पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया था। इसके अलावा राजस्थान रत्न अवार्ड 1986 में, नेशनल सिटीज़न अवार्ड 1994 में, भामाशाह पुरस्कार, मदर टेरेसा पुरस्कार, छत्तीसगढ़ में 2004 में लाइफ़ टाइम अचीवमेंट अवार्ड के अलावा ढेरों सम्मान उन्हें मिले पर सुधीर का मानना था कि उनके कार्टून को देखते ही पाठकों के चेहरे पर मुस्कान आना ही उनके लिए सबसे बड़ा सम्मान है।

सुधीर तैलंग की हँसी-मज़ाक की प्रवृत्ति थी तभी तो ब्रेन ट्यूमर के ऑपरेशन के समय वो डॉक्टर से कहना नहीं चूके कि 'आप मेरे ब्रेन से ट्यूमर तो निकाल सकते हैं पर ह्यूमर नहीं'। ब्रेन कैंसर जैसी दर्दनाक बीमारी से जूझते हुए उन्होंने कभी हार नहीं मानी, आख़िरी समय तक उनके लतीफ़ों ने साथ नहीं छोड़ा। कैंसर से जूझते हुए 6 फरवरी, 2016 को उन्होंने अपने 56वें जन्मदिन से 20 दिन पहले इस दुनिया से विदा ले ली। ऐसे प्रतिभाशाली कार्टूनिस्ट का मात्र 55 साल की उम्र में चले जाना सचमुच कार्टून कला के लिए बड़ी क्षति थी।

कैंसर ने भले ही एक कार्टूनिस्ट को पराजित कर दिया हो लेकिन उनके जीवित कार्टून हमेशा सबके चेहरे पर मुस्कुराहट बिखेरते रहेंगे, हँसाते रहेंगे, गुदगुदाते रहेंगे। ❑

सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आज़ादी का अमृत महोत्सव

ई-रिसोर्स एग्रीगेटर (ईआरए)

के इम्पैनलमेंट के लिए आवेदन आमंत्रित

सरकार के प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान से जुड़ने और उसके ई-प्रकाशनों के विक्रय का सुनहरा अवसर



विशेषताएं :-

- प्रकाशन विभाग की लोकप्रिय ई-पुस्तकें और ई-पत्रिकाएं उपलब्ध कराने का अवसर।
- प्राप्त राजस्व में 30% की निश्चित हिस्सेदारी।
- किसी निवेश की आवश्यकता नहीं।
- मात्र 2000 रुपये का पंजीकरण शुल्क।

अधिक जानकारी के लिए देखें –
www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें
फोन : 011 24365609
ईमेल : businesswng@gmail.com
पता : व्यापार स्कंध, कमरा संख्या–758, सूचना भवन, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003



जन्मदिवस पर विशेष

साहित्यकार प्रसारणकर्त्ता
पं. नरेन्द्र शर्मा

युवा कवि नरेन्द्र शर्मा की आरम्भिक कविताएँ हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं 'सरस्वती' तथा 'चाँद' में छपीं। 1934 में नरेन्द्र शर्मा, मदन मोहन मालवीय द्वारा आरम्भ की गई पत्रिका 'अभ्युदय' के उप-सम्पादक बने। उन्होंने प्रयाग के दैनिक 'भारत' के सम्पादकीय विभाग में भी काम किया। 'विविध भारती' के साथ-साथ रेडियो के अन्य कार्यक्रम जैसे 'हवा महल', 'मधुमालती', 'जयमाला', 'बेला के फूल', 'चौबारा', 'पत्रावली', 'बंदनवार', 'मंजूषा', 'स्वर संगम', 'रत्नाकर', 'छाया गीत', 'चित्रशाला', 'अपना घर' आदि का नामकरण भी नरेन्द्र शर्मा ने ही किया और देखते-देखते देशभर में रेडियो सीलोन के श्रोता 'विविध भारती' सुनने लगे।

*स्तम्भ **'यत्र-तत्र-अन्यत्र'** में प्रमुखतः सोशल मीडिया अथवा डिजिटल मीडिया में प्रकाशित आलेखों एवं सामग्री को साभार प्रकाशित किया जाता है।*

इस बार प्रस्तुत है कवि, गीतकार, कहानीकार एवं प्रसारणकर्त्ता पं. नरेन्द्र शर्मा पर 'हिन्दी से प्यार है' ब्लॉग में उनकी सुपुत्री लावण्या दीपक शाह का आलेख। स्वयं लावण्या प्रतिष्ठित लेखिका एवं कवयित्री हैं और फिलहाल सपरिवार अटलांटा जार्जिया संयुक्त राज्य अमरीका में रह रही हैं।

पं. नरेन्द्र शर्मा का जन्म 28 फरवरी, 1913 को उत्तर प्रदेश के खुर्जा, ज़िला बुलन्दशहर के जहाँगीरपुर ग्राम में पण्डित पूर्णलाल एवं श्रीमती गंगा देवी के यहाँ हुआ।

चार वर्ष की अल्पायु में बालक नरेन्द्र ने अपने पूज्य पिता पूर्णलाल को खो दिया। भारतीय संयुक्त कुटुंब रहते हुए, बड़े ताऊजी ने बच्चे का पालन-पोषण अपने ज़िम्मे ले लिया तथा घर पर बालक की शिक्षा आरम्भ की। गंगा स्वरूपा माँ गंगा देवी ने अवश्य अपार कष्ट उठाया होगा, किन्तु बालक का विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। 11 वर्ष की आयु में बालक नरेन्द्र को अपनी बुआजी के घर भेज दिया गया।



लावण्या दीपक शाह
ई-मेल : lavnis@gmail.com



आकाशवाणी में प्रसारणकर्त्ता के रूप में

नरेन्द्र जब युवा हो रहे थे उस वक़्त हमारा भारतवर्ष पराधीन था। आर्य समाज और स्वराज्य प्राप्ति के प्रयास राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप लिए चरम पर थे। नरेन्द्र ने बचपन में ही 'सत्यार्थ प्रकाश' पुस्तक आत्मसात कर ली थी, जिसने उनकी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का विकास किया। एक दिन अपने गाँव के कुछ युवकों के साथ वे हाथ में झंडा उठाए, साहस दिखलाते, नदी पर बने पुल को पार करते हुए पुलिस चौकी तक चले गए थे।

प्रारम्भिक पाठशाला में, अत्यंत कुशाग्रबुद्धि नरेन्द्र, अपने अध्यापकों के चहेते थे। हाई स्कूल में पहुँचे तब आगे की शिक्षा खुर्जा में हुई। तत्पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी साहित्य विषय से स्नातकोत्तर किया। इलाहाबाद में छायावादी महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त से परिचय हुआ। निराला के आशीर्वाद प्राप्त हुए। महीयसी महादेवी के वे कृपा पात्र बने। विविध साहित्यिक गतिविधियों से जुड़े तथा छात्रावस्था में ही उदयीमान कवि नरेन्द्र शर्मा की काव्य-पुस्तकें प्रकाशित हो गईं।

चार मित्र घनिष्ठ मित्रता में बँधे– वीरेश्वर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह और नरेन्द्र शर्मा। नरेन्द्रजी ने अपने छात्र जीवन के मित्र, शमशेर बहादुर सिंह के लिए 'आलोचना' पत्रिका के अंक में लिखा-



नरेन्द्र शर्मा के साथ शमशेर बहादुर सिंह, वीरेश्वर सिंह और केदारनाथ अग्रवाल

"बोर्डिंग हाउस में शमशेर का कमरा बड़ी सड़क की ओर खुलता था। जाड़ों की रातों में सड़क के सहारे सोते हुए बेसहारा किसी ग़रीब को शमशेर ने कभी अपना गरम कोट दे डाला, तो कभी अपना कम्बल! किसी अन्य छात्र की फ़ीस भरने के लिए, शमशेर ने स्वयं को परीक्षा देने के अवसर से वंचित किया है, यह भी सत्य है!"

युवा कवि नरेन्द्र शर्मा की आरम्भिक कविताएँ हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं 'सरस्वती' तथा 'चाँद' में छपीं। 1934 में नरेन्द्र शर्मा, मदन मोहन मालवीय द्वारा आरम्भ की गई पत्रिका 'अभ्युदय' के उप-सम्पादक बने। उन्होंने प्रयाग के दैनिक 'भारत' के सम्पादकीय विभाग में भी काम किया।

1933 में उनकी पहली कहानी 'भारत' में प्रकाशित हुई। 1934 में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कृति 'यशोधरा' की समीक्षा लिखी। कालांतर में पन्तजी की 'रूपाभ' पत्रिका में भी कार्यभार सम्भाला।

इलाहाबाद में उन्होंने यह कविता लिखी-

'यह जीवन चंचल छाया है,
बदला करता प्रतिपल करवट,
मेरे प्रयाग की छाया में पर,
अब तक जीवित अक्षयवट।'



कविवर हरिवंशराय बच्चन तथा सुमित्रानन्दन पन्त के साथ पं. नरेन्द्र शर्मा

1938 में स्वाधीनता संग्राम व देशप्रेम से भरा नरेन्द्र के गीतों का संग्रह 'प्रभात फेरी' आया। एक काव्य पंक्ति भारत के प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को अत्यंत प्रिय थी जो उन्होंने अपने संस्मरण में लिखी-

'आओ हथकड़ियाँ तड़का हूँ,
जागो रे नतशिर बन्दी'!

उसी कालखण्ड की एक और

कविता अदम्य साहस के साथ आह्वान करते हुए अपने भारतीय बन्धु-बाँधयों से कहती है

'कुछ भी बन, बस कायर मत बन, ठोकर मार पटक मत माथा, तेरी राह रोकते पाहन'

'कुछ भी बन, बस कायर मत बन,
ठोकर मार पटक मत माथा,
तेरी राह रोकते पाहन
कुछ भी बन, बस कायर मत बन।'

वे 1938 से 1940 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' में हिन्दी अधिकारी के पद पर, आनंद भवन, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में कार्यरत रहे।

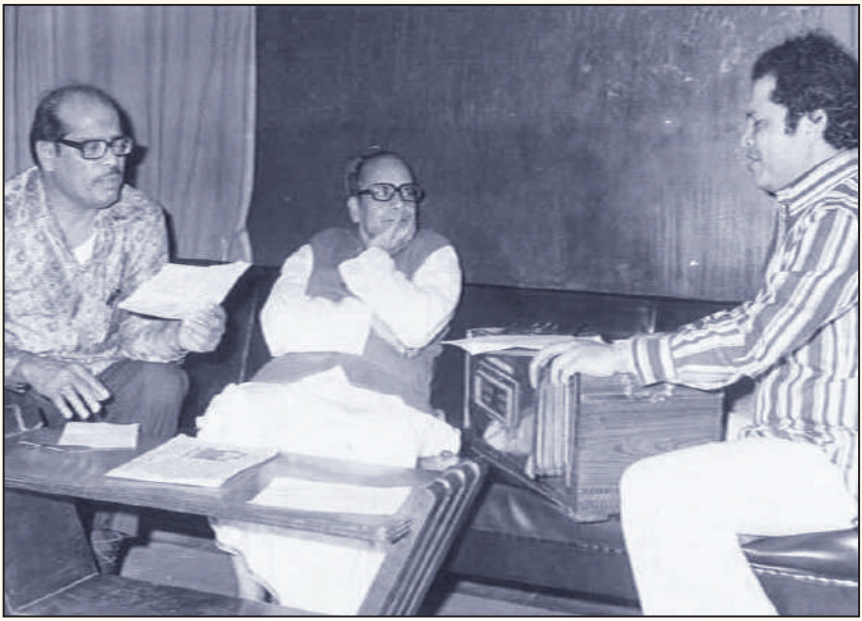
1939 में साहित्य प्रेमियों से उनके काव्य-संकलन 'प्रवासी के गीत' को अत्यधिक सराहना मिली एवं कवि नरेन्द्र शर्मा लिखित सभी काव्य-पुस्तकों में यह सर्वाधिक लोकप्रिय हुई। संग्रह की एक कविता 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे' सहृदय पाठकों के मन को उर्मिल तरंगों से उद्वेलित करने में सक्षम हुई। यह विरह गीत कालजयी सिद्ध हुआ-

'आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे
दूर होंगे पर सदा को, ज्यों नदी के दो किनारे
सिन्धु तट पर भी न दो जो मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?
तट नदी के भग्न उर के, दो विभागों के सदृश हैं,
चीर जिनको, विश्व की गति बह रही है, वे विवश है!
आज अथ-इति पर न पथ में मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?'

1940 में भारत के वाइसरॉय थे मार्विस लीनलिथगो। उनके डाइरेक्ट ऑर्डिनेंस के तहत, बिना मुक़दमे या किसी प्रकार की अपील का निषेध करते हुए, नरेन्द्र शर्मा को, दिसम्बर माह की पहली तारीख़ को स्वतन्त्रता सेनानी होने की सज़ा मिली। वे उस समय काशी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। 1940 से 1942 का समय नरेन्द्र शर्मा ने ब्रिटिश जेल में बिताया। क्रूर ब्रिटिश सत्ता द्वारा बन्दी गृह में वे क़ैद रहे। यह कवि मानस की अग्नि परीक्षा का काल था। देवली डिटेंशन जेल, राजस्थान प्राँत तथा आगरा जेल में, कवि नरेन्द्र शर्मा ने



स्वर कोकिला लता मंगेशकर के साथ पं. नरेन्द्र शर्मा



मन्ना डे के साथ एक रिकॉर्डिंग स्टूडियो में

कारावास भोगा। स्वतन्त्रता सेनानी नरेन्द्र शर्मा ने भूख-हड़ताल करने का निश्चय किया तथा 14 दिन तक नरेन्द्र शर्मा ने आमरण अनशन किया।

'कामिनी' 1943 में स्वतन्त्रता सेनानी पण्डित नरेन्द्र शर्मा द्वारा ब्रिटिश जेल के बैरक से लिखी पुस्तक है। जेल की सलाख़ों के पीछे 'कामिनी' काव्य-संग्रह का मधुर काव्य-स्त्रोत कवि नरेन्द्र शर्मा के मन से निसृत हुआ। जेल में दिए जाने वाले पन्नों पर, एक छोटी-सी खुली खिड़की से यदा-कदा झाँकते चन्द्रमा के नीचे खिली मधुर सुगंधित, पुष्पित कामिनी के बिरवे को कवि नरेन्द्र देखा करते थे। उस कालखण्ड में लिखीं सुरम्य कविताएँ आज भी महक रही हैं, आज भी सजीव हैं! कविता 'बन्दी की बैरक' की पह पंक्तियाँ बन्दी जीवन के अनुभव को साकार कर रही हैं-

यहाँ कँटीले तार और फिर खींची चार दीवार
मरकत के गुम्बद से लगते हरे पेड़ उस पार-

भगत सिंह जिन्हें अपना गुरु मानते थे, वैसे देशभक्त सचिन्द्रनाथ सान्याल और नरेन्द्र शर्मा जेल की काल कोठरी में एक साथ रहे। यहीं जेल के अन्य साथियों के संग, नरेन्द्रजी ने 14 दिन का अनशन किया। प्राण छूटने की घड़ी निकट आती जान जेल के गोरे अधिकारियों ने, हाथ-पैर निर्ममता से बाँध कर उन्हें जबरन सूप पिलाकर जीवित रखा। गाँव जहाँगीरपुर में नरेन्द्रजी की माता गंगादेवी को एक सप्ताह पश्चात पता चला कि उनके लाडले इकलौते

पुत्र ने अन्न त्याग किया है, अब देशभक्त बेटा भूखा हो तब माँ कैसे खाती? सो, अम्माजी ने भी एक सप्ताह के लिए अन्न त्याग दिया। जेल से बीमार और कमज़ोरी की हालत में नरेन्द्र को मुक्त किया गया, तो वे अपनी स्नेहमयी अम्मा के दर्शन करने सीधे गाँव पहुँचे। देशभक्त नरेन्द्र शर्मा का, ग्रामवासियों ने आगे बढ़कर भव्य स्वागत किया। शायद वही याद 'पलाश वन' कविता-संग्रह की कविता, 'पलाश' में उतरी-

'अब हुई सुबह, चमकी कलगी, दमके मख़मली लाल शोले
फूले टेसू बस इतना ही समझे पर देहाती भोले
लो, डाल डाल से उठी लपटा लो डाल डाल फूले पलाश
यह है बसंत की आग, लगा दे आग, जिसे छू ले पलाश
लग गई आग, बन में पलाश, नभ में पलाश, भू पर
पलाश लो, चली फाग, हो गई हवा भी रंगभरी छू कर पलाश'।

पण्डित नरेन्द्र शर्मा की ख्याति गीतकार एवं कवि रूप में अधिक है, किन्तु कवि ने अनेकानेक सरस कथाएँ भी रचीं हैं- 'कड़वी मीठी बातें' (ज्वाला परचूनी), 'मोहन दास करमचन्द गाँधी : एक प्रेरक जीवनी' नरेन्द्र शर्मा की गद्य रचनाएँ हैं।

फ़िल्मजगत एवं आकाशवाणी में महत्वपूर्ण योगदान

1943 में भारतीय सिने जगत से बॉम्बे टॉकीज़ की मालकिन, निर्मात्री व तारिका,

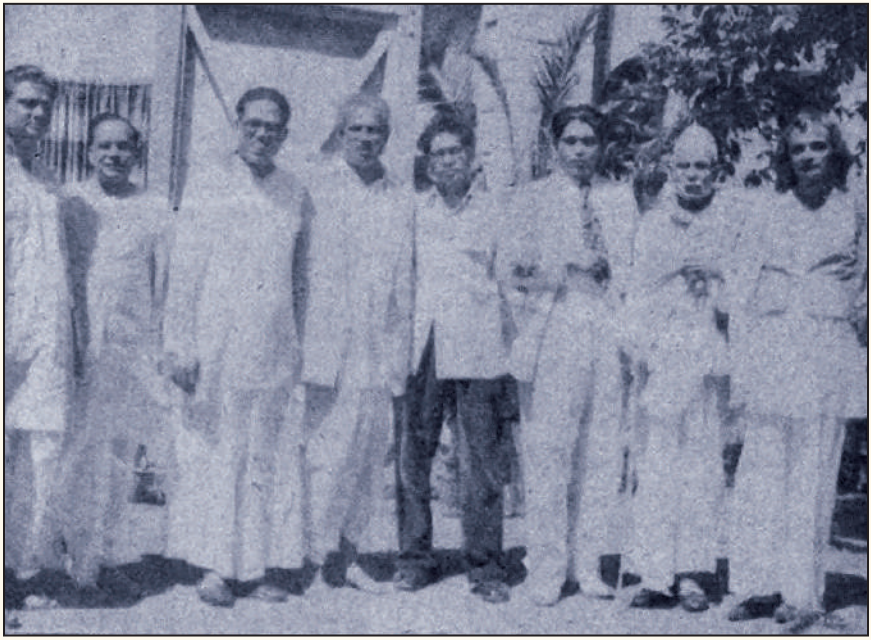


दूरदर्शन केन्द्र के तत्कालीन स्टूडियो सेटअप में एक रिकॉर्डिंग के दौरान अतिथि वक्ताओं के साथ पं. नरेन्द्र शर्मा

देविका रानी ने नरेन्द्र शर्मा को गीत व पटकथा लेखन लिए अनुबंधित किया। फ़िल्म 'हमारी बात' नरेन्द्र शर्मा के गीतों से सजी प्रथम हिन्दी फ़िल्म थी। 1944 में एक नवोदित कलाकार दिलीप कुमार को लेकर बनी फ़िल्म 'ज्वार-भाटा' के सभी गीत नरेन्द्र शर्मा ने लिखे। युसूफ़ ख़ान को यह नाम 'दिलीप कुमार' नरेन्द्र ने ही सुझाया था। तीन नाम चुने गए थे- जहाँगीर, वासुदेव, दिलीप कुमार! नरेन्द्र शर्मा ने सुझाव दिया कि 'दिलीप कुमार' नाम से अपार सफलता हासिल होगी! समय साक्षी है कि उनकी यह भविष्यवाणी सौ प्रतिशत सत्य हुई!

हिन्दी फ़िल्म संगीत में ऐसे शुद्ध हिन्दी शब्द-सौन्दर्य समाहित गीतों ने हिन्दी साहित्य को आधुनिक कला क्षेत्र सिने संगीत से जोड़कर एक नया स्वर्णिम अध्याय लिखा। इसी महानगरी बम्बई (अब मुम्बई) में 1947, 12 मई के शुभ दिवस नरेन्द्रजी और सुशीलाजी का विवाह सम्पन्न हुआ। सुशीलाजी चित्रकार थीं।

1953 के बाद नरेन्द्रजी आकाशवाणी तथा विविध भारती रेडियो प्रसारण सेवा से जुड़े। 1953 से 1971 तक नरेन्द्र शर्मा आकाशवाणी के मुख्य प्रबन्धक व निदेशक रहे। आकाशवाणी की रंगारंग सेवा 'विविध भारती' का नामकरण पं. नरेन्द्र शर्मा ने ही किया। 3 अक्तूबर सन् 1957 के शुभ दिन सर्वप्रथम प्रसार गीत, जो रेडियो प्रसारण से



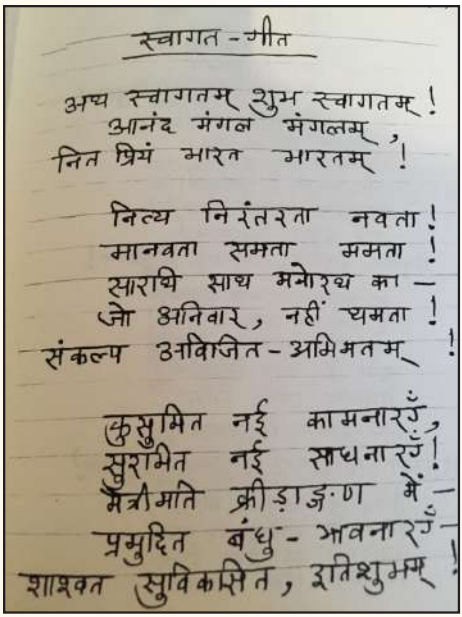
एक दुर्लभ समूह छाया चित्र : माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पन्त, शिवमंगल सिंह 'सुमन', हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर तथा अन्य कवि

बजा वह गीत था-

'नाच रे मयूरा खोल कर सहस्त्र नयन,
देख सघन गगन मगन, देख सरस स्वप्न,
जो के आज हुआ पूरा, नाच रे मयूरा।'

इसे मन्ना डे ने गाया और संगीतबद्ध किया भारतीय सिने संगीत के पितामह अनिल बिस्वास ने। इसके साथ ए.आई.आर. रेडियो प्रसारण सेवा 'विविध भारती' का श्रीगणेश हुआ! 'विविध भारती' के साथ-साथ रेडियो के अन्य कार्यक्रम जैसे 'हवा महल', 'मधुमालती', 'जयमाला', 'बेला के फूल', 'चौबारा', 'पत्रावली', 'बंदनवार', 'मंजूषा', 'स्वर संगम', 'रत्नाकर', 'छाया गीत', 'चित्रशाला', 'अपना घर' आदि का नामकरण भी नरेन्द्र शर्मा ने ही किया और देखते-देखते देशभर में रेडियो सीलोन के श्रोता 'विविध भारती' सुनने लगे। 'आकाशवाणी' के इतिहास में 'विविध भारती' की यह सफलता स्वर्णिम अक्षरों में लिखी गई, जिसका श्रेय पण्डित नरेन्द्र शर्मा को जाता है। 1960 में प्रसिद्ध सितारवादक रविशंकर द्वारा स्वरबद्ध किया एशियाई खेलों का स्वागत गीत 'स्वागतम', 'शुभ स्वागतम', 'आनंद मंगल मंगलम' नरेन्द्र शर्मा ने लिखा।

साहित्य-सृजन के साथ-साथ सिनेमा, रेडियो तथा टेलीविज़न जैसे आधुनिक युग के प्रसार-प्रचार के सभी माध्यमों द्वारा पण्डित नरेन्द्र शर्मा सृजनशील रहे। स्वतन्त्र भारत के लिए नई दिशा तलाशते हुए, उन्होंने कितने ही नए द्वार खोले व नित नए सोपानों को पार करते हुए जन जीवन को आधुनिक उपकरणों द्वारा एक सूत्र में पिरोने का महत्वपूर्ण कार्य किया। कला व विज्ञान का ऐसा सिद्धिदायक मणि-काँचन योग पण्डित नरेन्द्र शर्मा की दूरदर्शिता एवं समाज सेवा भाव से ही सफल हो पाया। साहित्य का संवर्धन करती पुस्तकें हों, फ़िल्मी गीत व पटकथा हो, रेडियो रूपक या कथा कहानियाँ हों, नृत्य नाटिकाएँ हों या 'स्वागतम' जैसे जनगीत हों या 1989 में प्रसारित दूरदर्शन प्रदर्शित 'महाभारत' का आधुनिक निरूपण करती टीवी सीरीज़ हो, इन विविध कला क्षेत्रों में नरेन्द्रजी ने अपना अप्रतिम योगदान दिया है।


स्वागत-गीत

अभ्य स्वागतम् शुभ स्वागतम्!
आनंद मंगल मंगलम्,
नित प्रियं भारत भारतम्!

नित्य निरंतरता नवता!
मानवता समता ममता!
सारथि साथ मनोरथ का—
जो अनिवार, नहीं थमता!
संकल्प अविजित-अभिमतम्!

कुसुमित नई कामनाएँ,
सुरभित नई साधनाएँ!
मैत्रीमति क्रीड़ाङ्गण में—
प्रमुदित बंधु-भावनाएँ—
शाश्वत सुविकसित, इतिशुभम्!

पं. नरेन्द्र शर्मा द्वारा हस्तलिखित गीत

11 फरवरी, 1989 को हृदय-गति रुकने से पण्डित नरेन्द्र शर्मा का देहावसान हो गया परन्तु इस ज्योति कलश की दीप्ति सदा के लिए जनमानस में व्याप्त रहेगी! ❑

मेरी पसन्द के कवि : नरेन्द्र शर्मा



भगवतीचरण वर्मा के साथ युवा नरेन्द्र शर्मा

प्रकृति में, दृष्टिकोण में, संस्कार में, समाज में, मुझमें और नरेन्द्र शर्मा में बहुत बड़ा अंतर रहा है। फिर भी नरेन्द्र शर्मा को मैंने अपना माना- उन्हें मैंने अपने बहुत बड़े मित्र के रूप में स्वीकार किया। आख़िर यह इसलिए न कि मैंने नरेन्द्र शर्मा में बहुत बड़ी साहित्यिक प्रतिभा देखी थी, मुझे उनकी कविताएँ बहुत अधिक पसन्द आई थीं और मैंने नरेन्द्र शर्मा में महान कवि और साहित्यकार के दर्शन किए थे।

बात सन् 1932-33 की है। कानपुर छोड़कर मैं इलाहाबाद में बसने का प्रयत्न कर रहा था। वकालत छोड़ दी थी। कुछ अपने एक समर्थ और कृपालु की सहायता से मैं इलाहबाद में एक बहुत बड़ी प्रकाशन संस्था की स्थापना में प्रयत्नशील था। उन्हीं दिनों नरेन्द्र शर्मा से मेरा परिचय हुआ।

नरेन्द्र शर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम.ए. के विद्यार्थी थे और कविताएँ लिखते थे। वह मेरे यहाँ आए, उनकी कविताएँ मैंने सुनी और उनकी कविताएँ मुझे अच्छी लगीं।

उन दिनों जैसी प्रथा थी, हरेक उठता हुआ नवयुवक कवि सुमित्रानन्दन पन्त की कविता से प्रभावित होकर कविता करता था। वह शब्द विन्यास में, छन्दों की लय में तथा भावों के प्रदर्शन में सुमित्रानन्दन पन्त का अनुसरण करता था। नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में यह सब मौजूद था। यह मैंने स्पष्ट देखा लेकिन इसके अलावा और इसके ऊपर था नरेन्द्र शर्मा का अपना निजी व्यक्तित्व- नरेन्द्र शर्मा के अंदर वाला सक्षम और समर्थ कवि। मैंने उस कवि का आदर और आत्मीयता के साथ स्वागत किया।

आज तीस वर्ष बाद जब मैं नरेन्द्र शर्मा की कविताओं को पढ़ता हूँ तब मुझे लगता है कि 1932-33 में मैंने नरेन्द्र शर्मा के सम्बन्ध में जो मूल्यांकन किया था और जो धारणा बनाई थी, उसमें मुझसे किसी प्रकार की ग़लती नहीं हुई थी। अभिव्यक्ति में संतुलन और भावों के सौष्ठव में नरेन्द्र शर्मा हिन्दी के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त के समकक्ष आते हैं। वैसे सुमित्रानन्दन पन्त नरेन्द्र से कहीं अधिक ऊँचे शिल्पी हैं, उनके शब्द-सौन्दर्य को अभी तक तो कोई पा नहीं सका है, लेकिन नरेन्द्र शर्मा में भी एक-दूसरे प्रकार का शब्द-सौन्दर्य है जो अनायास ही दूसरों को प्रभावित कर देता है।

-भगवतीचरण वर्मा ('आजकल', जून, 1962 से)



जन्मदिवस पर विशेष

बालसाहित्य की रचना-प्रक्रिया भी बड़ों के साहित्य की रचना-प्रक्रिया के समान ही होती है और इसका महत्व भी किसी साहित्य से कम नहीं होता। सामालोचना और इतिहास ने यदि अवहेलना और उपेक्षा की है तो यह समस्या उनकी है, बालसाहित्य की नहीं।

मुख्यधारा में माना जाए बालसाहित्य

*(साहित्य अकादेमी से सम्मानित बालसाहित्यकार **दिविक रमेश** से समालोचक **अश्विनी कुमार आलोक** की बातचीत)*

बालसाहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए हिन्दी तथा कई दूसरी भाषाओं की दो सौ से ज़्यादा पुस्तकों के लेखक दिविक रमेश का जन्म 6 फरवरी, 1946 में दिल्ली के किराड़ी नामक गाँव में हुआ। इनका मूल नाम रमेश चन्द शर्मा है। वह 2011 में दिल्ली विश्वविद्यालय के मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए। साहित्य अकादेमी पुरस्कार से पूर्व दिविक रमेश को दिल्ली हिन्दी अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, साहित्य भारती पुरस्कार जैसे क़रीब दो दर्जन महत्वपूर्ण पुरस्कार मिल चुके हैं। दर्जनों प्रौढ़ साहित्य पुस्तकों के रचयिता के रूप में सुख्यात दिविक रमेश का बालसाहित्य संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से ख़ास है। प्रस्तुत है बालसाहित्य के ज्वलंत प्रश्नों को लेकर बातचीत-

प्रश्न : आप बालसाहित्य लेखन की ओर कैसे प्रवृत्त हुए?

उत्तर : मैंने 12-13 साल की उम्र में लिखना शुरू कर दिया था। इसका कारण मेरे पिता का अच्छा



अश्विनी कुमार आलोक
ई-मेल : ashwinikumaralok@gmail.com

लोकगायक और मेरे नानाजी का साहित्यिक अभिरुचि का होना माना जा सकता है। पाँचवीं कक्षा तक अपने गाँव किराड़ी (दिल्ली) में पढ़ने के बाद मुझे आगे की पढ़ाई के लिए दिल्ली शहर में मेरे ननिहाल में भेज दिया गया था। यहीं मुझे साहित्यिक माहौल भी मिला। रेडियो पर बच्चों का कार्यक्रम सुनता था। अख़बारों में भी बालसाहित्य पढ़ता था। तब की अपनी रचनाओं को मैं बालसाहित्य नहीं मानता। वह बालक का लिखा साहित्य था। बालसाहित्य-सृजन लगभग 1977-78 में प्रारम्भ हुआ था, तब तक मैं बड़ों के लिए रची गई कविता और कहानी आदि (ख़ासकर कविता) के क्षेत्र में काफ़ी परिचित और चर्चित नाम हो चुका था। लगभग तमाम पत्रिकाओं में छप रहा था।



दिविक रमेश

इसी दौर में मुझे उस समय की प्रसिद्ध बाल पत्रिका 'नंदन' से बालसाहित्य लिखने का आग्रह किया गया जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। यह अलग बात है कि इस लेखन को मैंने जितना सरल समझा था वह ग़लत निकला। मेरे बच्चे सौरभ और दिशा उस समय छोटे-छोटे थे लेकिन समझदार थे। उन्हें अपनी बाल कविता सुनाता तो उन्हें वह पसन्द ही नहीं आती। आख़िर लगभग छह महीने के बाद उनको मेरी रची कुछ कविताएँ ठीक-ठाक लगीं। कुछ चैन पड़ा। उन्हें मैंने 'नंदन' और 'धर्मयुग' को प्रकाशनार्थ भेज दिया। 'धर्मयुग' में प्रकाशित मेरी पहली कविता का शीर्षक था 'मुन्ना बन बैठा दादा जब'। सुखद संयोग था कि यही पहली प्रकाशित कविता पंजाब एजुकेशनल बोर्ड ने तीसरी कक्षा के अपने पाठ्यक्रम में भी लगा दी। इसके बाद तो कविताएँ और कहानियाँ 'धर्मयुग' सहित उस समय की विभिन्न बाल-पत्रिकाओं में छपने का सिलसिला चल निकला। इसी बीच मेरी अत्यंत चर्चित बाल कविता 'अगर पेड़ भी चलते होते' भी छपी जो 'नंदन' के सम्पादक, बच्चों और बालसहित्य के बहुत बड़े हितैषी प्रतिष्ठित साहित्यकार जयप्रकाश भारती को बहुत ही प्रिय और उत्तम लगी। इसके बाद तो उनके अपार स्नेह और प्रेरणा ने मुझे बालसाहित्य-सृजन में आकंठ डुबो दिया। इस लेखन को अब मैं अनिवार्य मानता हूँ।

बालसाहित्य को साहित्य की मुख्य धारा में माना जा सकता है? हिन्दी साहित्य के समालोचना एवं इतिहास-लेखन का क्षेत्र अन्य विधाओं से अलग क्यों है?

एकदम मुख्य धारा में माना जाना चाहिए। बालसाहित्य की रचना-प्रक्रिया भी बड़ों के साहित्य की रचना-प्रक्रिया के समान ही होती है और इसका महत्व भी किसी साहित्य से कम नहीं होता। समालोचना और इतिहास ने यदि अवहेलना और उपेक्षा की है तो यह समस्या उनकी है, बालसाहित्य की नहीं। ज्ञानपीठ या नोबेल पुरस्कार के लिए बालसाहित्य की जैसे कोई अहमियत ही नहीं है। यह विडम्बना है और दुर्भाग्य भी। मुझे ख़ासकर जयप्रकाश भारती फिर याद आ रहे हैं जो बालक और बालसाहित्य के उचित महत्व को रेखांकित

करने के लिए ताउम्र निःस्वार्थ भाव से समर्पित होकर लड़ते रहे थे। निःसंदेह बालसाहित्य के इतिहास-लेखन की दिशा में निरंकारदेव सेवक के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। अब तो ठीक-ठिकाने का इतिहास प्रकाश मनु भी ले आए हैं। शोध के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय काम हैं। मस्तराम कपूर, श्रीप्रसाद, हरिकृष्ण देवसरे आदि के नाम याद आ रहे हैं। आलोचना का क्षेत्र अभी लगभग सपाट है। बहुत कम काम हो रहा है।

बालसाहित्य लिखना क्या प्रौढ़ साहित्य लिखने की अपेक्षा अधिक श्रमसाध्य है?

मैं कहूँगा कि बड़ी ज़िम्मेदारी का काम तो है ही। यह इसलिए कि बालसाहित्य के बच्चे-पाठकों की तैयारी प्रौढ़ों की अपेक्षा कम होती है। अतः सावधानी अधिक बरतनी पड़ती है। अभिव्यक्ति सहज और बच्चों के अनुकूल रखनी होती है।

बालसाहित्य का लोकपक्ष अथवा पारम्परिक बालसाहित्य की विलुप्ति चिन्तित करती है। क्या बालसाहित्यकार के अतिरिक्त कोई अन्य सामाजिक पात्र या पद्धति हो सकती है, जहाँ से इन्हें समर्थन अथवा संवर्द्धन मिल सके?

पहले पूरा साहित्य ही श्रुति परम्परा में उपलब्ध था जबकि आज वह पुस्तक ही नहीं बल्कि दूसरे माध्यमों में भी उपलब्ध है लेकिन मैं बालसाहित्य में लोक की भूमिका को उसी तरह महत्वपूर्ण मानता हूँ जिस तरह बड़ों या प्रौढ़ों के साहित्य में मानता हूँ। अच्छी बात है कि आज कम ही सही पर लोक की ताक़त का ख़ासकर अभिव्यक्ति के स्तर पर हिन्दी बालसाहित्य में उपयोग हो रहा है। इधर के कवियों में प्रदीप शुक्ल का नाम ले सकता हूँ। हमें याद रखना चाहिए कि बच्चा केवल शहर का नहीं है, वह क़स्बे का भी है, गाँव का भी है, जंगल का भी है, अट्टालिका का भी है, झोपड़ी का भी है। इस सिलसिले को अन्य आधारों तक भी बढ़ाया जा सकता है। अतः रचनाकार की निगाह को सब जगह जाना होगा। पारम्परिक बालसाहित्य में जो प्रासंगिक है अर्थात रूढ़िगत नहीं है, वह बचा रहेगा, शेष म्यूज़ियम या शोध की वस्तु बन रहा है तो क्या ग़म। समय, सोच, बोध आदि बदलते हैं तो रचना का स्वरूप भी बदलता है। प्रयोग भी होते हैं। टेक्नोलॉजी के हस्तक्षेप को भी समझना होगा और उसे सकारात्मक दिशा देनी होगी। बच्चे का दोस्त और साथी बनना होगा; सहज भाव से।

पाठ्य-पुस्तकों की सामग्री और पत्रिकाओं की बालसाहित्य-रचनाओं में क्या कोई भेद है?

उद्देश्य का भेद है। पाठ्य-पुस्तकों का पठन-पाठन कुछ सीखने-सिखाने के लिए होता है। यही कारण है कि उसके साथ परीक्षा जुड़ी है। बालसाहित्य का उद्देश्य प्रधानतः मनोरंजन के लिए होता है। स्वेच्छा से पढ़ने और आनंद लेने का होता है। उसके माध्यम से जो समझ विकसित होती है उसके लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना होता। पाठ्यपुस्तक में बालसाहित्य हो सकता है लेकिन बालसाहित्य बुनियादी रूप में पाठ्यपुस्तक नहीं होता। बहुत-से महानुभाव कविता या कहानी आदि के रूप (फ़ॉर्म) में शिक्षार्थ सामग्री (चाहे वह विज्ञान की हो या इतिहास की हो अथवा भूगोल की) भर कर मान लेते हैं कि उन्होंने बालसाहित्य लिख लिया है। सच तो यह

है कि वे बालसाहित्य लिखते ही हैं, रचते नहीं। अतः उपयोगी बालसाहित्य और सृजनात्मक बालसाहित्य में अंतर करके चलना होगा। सोच वैज्ञानिक होनी चाहिए। रचना में यदि विषय की तरह विज्ञान हावी है तो उसे सृजनात्मक साहित्य मानने में दिक़्क़त हो सकती है।

बालसाहित्य क्या सिर्फ़ बच्चों के लिए है?

प्रौढ़ साहित्य भले ही केवल प्रौढ़ों के लिए होता है लेकिन बालसाहित्य सबके लिए अर्थात् हर उम्र के व्यक्ति के लिए होता है। बालसाहित्य मनोरंजन, समझ और संस्कार आदि हर स्तर पर बच्चों को ही नहीं प्रौढ़ों को भी प्रभावित करने की क्षमता रखता है। बड़ों की यह भूल है कि बालसाहित्य केवल बच्चों के लिए होता है।

प्रौढ़ लोग बालसाहित्य से किस प्रकार जुड़ाव रखें?

बालसाहित्य का सृजन प्रौढ़ ही कर रहे हैं न! प्रौढ़ों को उसे पढ़ना चाहिए अपने लिए भी और बच्चों को अच्छा लेखन सुझाने और उनसे बातचीत के लिए भी। बच्चों और बड़ों के बीच जो इधर दूरी प्रतीत हो रही है वह भी दूर होगी। साहित्य कोई भी हो, हमेशा मनुष्यता को बचाता भी है और उसे बेहतर करने की समझ भी देता है। तनाव मुक्त तो करता ही है।

परीकथाओं को फँतासी कथाओं का पूर्व अथवा आदि स्वरूप मान सकते हैं?

दोनों के ही मूल में कल्पना और चमत्कार है। परीकथा का मूल आशय किसी मनुष्य से मिलते-जुलते पात्र की कहानी से नहीं था, बल्कि 'पर' अर्थात् कल्पना की उड़ान वाली कथाओं से था। बावजूद आज के बच्चे से जुड़े सरोकारों के अनुभवों का बड़ा हिमायती होने के, मैं आज भी परीकथा का विरोधी नहीं हूँ। न ही राजा-रानी, ऋषि-मुनियों आदि की कहानियों का। विरोधी कहानियों में आए ट्रीटमेंट का हूँ। उनमें बसे अंधविश्वासों, अविश्वसनीय चमत्कारों, सामंतवादी मूल्यों आदि का हूँ। आज भी ऐसे सशक्त रचानाकार हैं जिन्होंने ऐसे पात्रों को वैज्ञानिक सोच के साथ रचा है। परम्परा के नाम पर रूढ़ियों को ढोने का कोई अर्थ नहीं होता। लोककथाओं को भी बच्चों के लिए लिखते समय उनमें ऐसा रचाव लाना चाहिए कि उनसे प्रतिकूल और बासी मूल्य झड़ जाएँ अर्थात् बच्चों के लिए लोककथाएँ पुनर्रचना से गुज़रनी चाहिए। समझना होगा कि रचना अंततः कलात्मक अनुभव होती है, विषय नहीं। जो रचना को विषय के रूप में देखते हैं, गड़बड़ वे करते हैं।

वैज्ञानिक और डिजिटल युग में बालसाहित्य का स्वरूप क्या हो?

युग की चिन्ता जायज़ है। बालसाहित्य क्या हो, यह ज़रूरी है और इस सम्बन्ध में मैं पहले बता चुका हूँ। वह पुस्तक रूप में भी हो सकता है। ई-बुक्स के रूप में भी हो सकता है लेकिन पुस्तक की ज़रूरत और महत्व अपनी जगह है। आज भी मुझे रचना पहले काग़ज़ पर लिखने में सुविधा है। बाद में उसे टाइप करता हूँ। हाँ, काँट-छाँट स्क्रीन पर भी हो जाती है।

बालसाहित्य और किशोर साहित्य में कितना अंतर है?

किशोर साहित्य को बालसाहित्य के अंतर्गत ही माना जाना चाहिए। आयु के

आधार पर शिशु, किशोर आदि कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश आदि अनेक रचनाकारों के यहाँ किशोरों को लेकर बालसाहित्य मिलता है। जहाँ तक मेरी बात है, मैं बालसाहित्य का सृजन करता हूँ। बँटवारे की अधिक चिन्ता नहीं करता। मेरे पाठक और आलोचक ही बताते हैं कि उनमें कौन-सा किशोरों के लिए है। मूल रूप से मेरा साहित्य तो सबके लिए होता है।

बालसाहित्य का उद्देश्य क्या है? जब बच्चे अपने वय की अपेक्षा अधिक विकसित मस्तिष्क के साथ उपस्थित हो रहे हैं, ऐसे में बालसाहित्य अपेक्षाएँ पूरी कर पा रहा है?

जी हाँ, हिन्दी में आज ऐसा साहित्य उपलब्ध है जो आज के बच्चे की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है। दिक़्क़त यह है कि बहुत-सा ऐसा श्रेष्ठ बालसाहित्य बहुतों की निगाह से, अलग-अलग कारणों से बाहर बना हुआ है। अतः वे जो आसानी से उपलब्ध हैं उसी के आधार पर अपनी धारणा बना लिया करते हैं। बालसाहित्य के चिन्तक जयप्रकाश भारती ने अपने जीते जी कितने ही वर्ष पूर्व उचित ही घोषणा कर दी थी कि हिन्दी में यह बालसाहित्य का स्वर्णयुग है। कई लोगों ने उनका मज़ाक भी उड़ाया था। उन्होंने उत्कृष्ट बालसाहित्य की पहचान कराने की भी बराबर कोशिश की थी। खुली और खोजी आँखों से देखेंगे तो पाएँगे कि आज हिन्दी के बालसाहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक ही नहीं, संस्मरण आदि कितनी ही अन्य विधाओं में भी श्रेष्ठ साहित्य उपलब्ध हो चुका है। मूल्यांकन तो श्रेष्ठ साहित्य के आधार पर किया जाना चाहिए ही।

बालसाहित्य बच्चे पढ़ रहे हैं?

निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि पढ़ रहे हैं। यह बात अलग है कि बच्चों का फ़ीडबैक कम मिलता है लेकिन पुस्तक तक बच्चे को अधिक-से-अधिक ले जाना एक चुनौती तो है।

किसी लेखक का बालसाहित्य लेखन क्या उसके प्रौढ़ साहित्य लेखन से प्रभावित होता है? कोई लेखक बच्चों के लिए लिखने की क्या-क्या तैयारियाँ करता है?

बच्चों के लिए सृजनात्मक साहित्य लिखने के लिए सबसे बड़ी तैयारी बच्चों में निरंतर रहकर उनसे आत्मीय बातचीत करने, उनको समझते रहने के रूप में करनी होती है। दोस्त बनकर, हमउम्र बनकर, विश्वासपात्र बनकर। बालसाहित्य की अपनी भाषा और अन्य भाषाओं की समृद्ध परम्परा से भी जुड़ाव के साथ परिचित होने की कोशिश जारी रहनी चाहिए, पर उसे ख़ुद पर हावी नहीं होने देना चाहिए। जहाँ तक प्रभावित होने की बात है तो वह सहज रूप में कहीं से भी हो सकता है लेकिन रचे हुए रूप में बालसाहित्य की अपनी स्वायत्त दुनिया होती है।

बालसाहित्यकारों की नई पीढ़ी आवश्यक रूप से क्या करें?

निरंतर बच्चों के बीच रहकर नए-से-नए अनुभव ग्रहण करें और उन सा बनकर उन अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति दे। जो श्रेष्ठ लिखा जा चुका है, उसकी नक़ल से बचे बल्कि उससे हटकर कुछ नहीं, राह पर चलने की कोशिश करें। ❑



दो साल बाद मिसेज़ डेविड ही उसकी क्लास टीचर बनीं। ऑल राउंडर स्टूडेंट होने के बावजूद उन्होंने कभी उसे ए ग्रेड नहीं दिया। शायद अतीत की उसकी ग़लती मिसेज़ डेविड की क़लम को रोक लेती थी। मन-ही-मन बुलबुल कुंठित होने लगी... क्या मिसेज़ डेविड ने उसे आज तक माफ़ नहीं किया!

दाग़

दो हज़ार की क्षमता वाला लंदन का फ़ेडरल हॉल नौजवानों की भीड़ से पटा पड़ा था जिसमें अधिकांश भारतीय मूल के छात्र हैं। सब बेचैन थे लिपिका की एक झलक पाने को।

लिपिका के लिए भी आज जीवन का ऐतिहासिक दिन था। लगभग पन्द्रह साल के शानदार कैरियर के बाद उसे 'लंदन टाइम्स' की ओर से 'बेस्ट मीडिया पर्सन' का अवॉर्ड मिलने जा रहा है। उसने 'वेक अप इंडिया' चैनल के लिए यूक्रेन जाकर ग्राउंड रिपोर्टिंग की थी और अपनी खुली आँखों से देखा किस तरह यूक्रेनी नागरिक रूस की ओर से लादे गए लम्बे युद्ध की भयावहता झेल रहे हैं। वहाँ की सड़कों पर नाच रहे मौत के दारुण दृश्यों ने उसे झिंझोड़ कर रख दिया। बाद में लिपिका ने अपनी रिपोर्टिंग के आधार पर यूक्रेन में हो रहे मानवाधिकार हनन पर किताब लिखी 'ब्लडशेड इन द स्ट्रीट्स ऑफ़ खारकीव'।

किताब में पेश की गई युद्ध की विभीषिका ने मीडिया की दुनिया में हलचल मचा दी, तमाम अख़बारों और पत्रिकाओं की सुर्ख़ियाँ बटोरी, लिपिका को देश-विदेश से भरपूर सराहना मिली और इस नामचीन अवार्ड के लिए उसे चुन लिया गया।

अपने शहर से साढ़े तेरह घंटे की उड़ान में लगभग आठ हज़ार किलोमीटर का सफ़र तय करके दो दिन पहले वह यहाँ पहुँची है।



भावना शेखर
ई-मेल : bhavnashekhar8@gmail.com

अभी ग्रीन रूम में बैठी मंच से अपने नाम की उद्घोषणा का इंतज़ार कर रही है। रोमांच अपने उच्चतम शिखर पर है। दिल धक-धक की धौंकनी नहीं, रागिनी छेड़ रहा है। पैरों में अनदेखे घुँघरुओं की रुनझुन बज रही है। काश...काश, आज पापा होते! सोचकर आँखों में नमी उतर आई। माँ भी तो नहीं आ पाईं, इन बेशकीमती लम्हों की गवाह बनने। पाँवों में लगा स्पीड का इंजन थम जो गया है, ज़िन्दगी की मैराथन में दौड़ते-दौड़ते फ़िनिश पॉइंट पर आ पहुँची हैं। देश-विदेश से कितने ही तेल-मरहम और स्प्रे मँगा चुकी है पर सब बेकार। दस मिनट लगातार खड़ी हुई नहीं कि लगता है घुटनों के नीचे मन भर के पत्थर बाँध दिए हों, पैर सूजकर खम्भा हो जाते हैं। अब तो घर की दहलीज़ में ही सिमट कर रह गई हैं।

लिपिका रह-रहकर माँ को याद कर रही है। फूलों की शौकीन माँ उतरते अप्रैल में यहाँ के पार्कों में खिले हुए अजेलिया, विस्टेरिया, ट्यूलिप और ब्लूबेल्स देखकर कितनी ख़ुश होती! फूल न सही, फूलों की ढेर सारी तस्वीरें खींच कर कैमरे में क़ैद कर ली है उसने।

लम्बे सफ़र के बाद परसों दिनभर आराम किया। कल का दिन लंदन के सबसे प्रसिद्ध हाइड पार्क के नाम था। उसकी इच्छा पर आयोजन समिति ने पार्क भ्रमण का इंतज़ाम कर दिया। चार हज़ार पेड़ों वाले 350 एकड़ में फैले पार्क को नाप लेना सम्भव नहीं था पर फ़िलवक़्त सुरम्य प्रकृति को ज़्यादा-से-ज़्यादा निगाहों में भर लेना उसका मक़सद है। नीली कंच पारदर्शी झीलें, मख़मली घास के मैदान और गार्डेनिया के फूलों से लदे बग़ीचे देख लगा यहाँ क़ुदरत कितनी मेहरबान है पर इंसानी करामात को भी नकारा नहीं जा सकता जिसने दोनों हाथों से क़ुदरत को सँवारा है... सहेजा है। पार्क के ग्रीनहाउस और रोज़ गार्डन में तो वीडियो कॉल करके उसने माँ को वहाँ के नज़ारे भी दिखाए।

बैक स्टेज बैठी वह सोच रही है जब इतना बड़ा अवॉर्ड लेकर जाएगी तो माँ के चेहरे पर कैसे भाव होंगे! ख़ुशी के, गर्व के, आह्लाद के....! आह, इन सारे भावों में घुली-मिली माँ की मुस्कान देख उसके मन से अपराधबोध की वो काली बदली छँट जाएगी जो बरसों से आत्मा पर लटकी है।

अपने नाम की पुकार सुनते ही लिपिका ने कल्पना की संदूकची को बन्द कर मंच का रुख़ किया। मंच पर उतरते ही दर्शक दीर्घा से स्वर लहरियों का एक रेला उठा। तालियों की गड़गड़ाहट एकबारगी महादेव के डमरू की तरह कानों में गूँजी और फिर माँ की थपकियों की तरह हौले-हौले शान्त हो गई।

उद्घोषिका ने लिपिका की उपलब्धियों का बख़ान करते हुए उसका लम्बा-चौड़ा परिचय दिया। उसके साथ मंच पर हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के एक सम्मानित और वरिष्ठ सदस्य मौजूद थे जिनके हाथों उसे 'बेस्ट मीडिया पर्सन' की शानदार ट्रॉफ़ी दी गई। दर्जनों कैमरों की लाइट से आँखें चकाचौंध हो गईं। कुछ पल के लिए ख़ुद को रोशनी के तिलस्मी घेरे की गिरफ़्त में महसूस किया। ट्रॉफ़ी लेते हुए बमुश्किल वो कह

पाई, "थैंक यू... सर!"

एक बार फिर सभागार तालियों से गूँज उठा। उसके हाथ से ट्रॉफ़ी लेकर उद्घोषिका ने लिपिका को माइक थमा दिया।

कुछ क्षणों का सुई पटक सन्नाटा! अभी तक कानों में घुले ध्वनि रस का सम्मोहन उस पर तारी था। होंठ थरथरा रहे थे, पलकों पर हठात् नमी का क़ब्ज़ा.... आनंद के सैलाब ने आपादमस्तक उसे भिगो दिया.... समंदर को कलश में सहेज लेना सम्भव नहीं। एक लम्बी साँस लेकर अपने अहसासात को ज़ब्त किया और होठों पर जीभ फेरते हुए हाल तक हो रही जुंबिश पर लगाम डाली।

"हेलो फ्रेंड्स!" कहते हुए दायाँ हाथ हिलाकर सबको वेव किया। इस अभिवादन के बाद एक बार पुनः दर्शकों की ओर से उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया मिली।

"आज मेरे जीवन का ऐतिहासिक दिन है, मैं अपने देश से बहुत प्यार करती हूँ पर आज परदेस की मिट्टी ने बाँहें फैलाकर मुझे गले लगाया है। यह अवॉर्ड देकर मुझे जो सम्मान दिया है वह किसी राज्याभिषेक से कम नहीं। मैं शुक्रगुज़ार हूँ, तहेदिल से 'लंदन टाइम्स' की जिन्होंने मेरी क़ाबिलियत को पहचाना और मेरी झोली को हौसले के हज़ार जुगनुओं से भर दिया। इस हौसले की मुझे बरसों से दरकार थी। मुझे कहा गया है कि नौजवानों को अपनी कामयाबी का राज़ बताऊँ पर मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहती हूँ। क्या आप सुनना चाहेंगे?"

"यस, यस वी विल..." समवेत स्वर हॉल की दीवारों से टकराया।

"यह कहानी है एक आठ साल की बच्ची बुलबुल की। एक नटखट और चुलबुली बच्ची, शरारत की पुड़िया चुहल की पिटारी पर पढ़ने में अव्वल। तिरती हवा में उसकी खिलखिलाहट बहती रहती। फिर अचानक एक गम्भीर बीमारी ने उसे आ जकड़ा। सारी चुहल, शरारत और खिलखिलाहट पर ताला लग गया। सालभर बिस्तर पर पड़ी रही... खेलकूद बन्द... स्कूल छूट गया। धीरे-धीरे ठीक हुई। दो साल बाद ज़िन्दगी पटरी पर आ गई। वो स्कूल जाने लगी, अब भी रोज़ मुट्ठी भर दवा फाँकनी पड़ती है, पर स्कूल जाना ...दोस्तों का साथ... मस्ती का आलम पुराने दिन लौटने लगा है। कॉन्वेंट की सिस्टर्स उसे देखते ही प्यार से बुलातीं, "गॉड ब्लेस यू" कहकर सर पर हाथ फेरतीं। सालभर में उसने कई वाद-विवाद प्रतियोगिता जीती, नाटकों में भाग लिया, स्पोर्ट्स में भी जौहर दिखाए। अपने वरिष्ठ और अध्यापकों की आँखों में चढ़ने लगी, तभी उससे एक भूल हो गई.... नहीं जानती थी उसका इतना बड़ा ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ेगा।

सातवीं कक्षा की फ़ाइनल परीक्षाएँ आ गईं। उसने सारे पेपर अच्छे लिखे। कल अंतिम पेपर है, कंप्यूटर साइंस का पर तैयारी है निल बटे सन्नाटा .... डर के मारे बुरा हाल है। बीमारी के कारण कंप्यूटर एप्लीकेशन का अभ्यास ज़ीरो। क्या करे... माँ-पापा हौसला बढ़ा रहे हैं, कई बार उसके कमरे में झाँक चुके हैं। वह किताबों में मुंडी घुसाकर पढ़ रही है, लिख रही है- देखकर वे आश्वस्त हैं। सुबह पापा ने 'ऑल द

बेस्ट' कहकर 'थम्स अप' किया है।

"आज मैं स्कूल लेने आऊँगा, वहीं से आइसक्रीम पार्लर चलेंगे", पापा चहक रहे थे।

मुरझाई मुस्कान के साथ बुलबुल ने पापा को 'बाय' कहा, पर दो घंटे भी न बीते थे कि स्कूल से कॉल आई। प्रिंसिपल ने पापा को बुलाया था। कई तरह की आशंकाओं से भरे पापा स्कूल पहुँचे। बुलबुल प्रिंसिपल ऑफ़िस के बाहर खड़ी थी। कातर निगाहों से पापा को देखा।

"मिस्टर चक्रवर्ती! प्लीज़ कम।"

बुलबुल भी धीमे क़दमों से पापा के पीछे-पीछे प्रिंसिपल ऑफ़िस में आई।

"मैडम, मुझे क्यों बुलाया?"

"ये देखिए, आपकी बेटी की करामात।" महीन हैंडराइटिंग में लिखी हुई काग़ज़ की चार-पाँच कतरनों का छोटा-सा पुलिंदा पापा के सामने पड़ा था।

हतप्रभ पापा ने बुलबुल की ओर देखा। उसकी आँखें डबडबा गईं।

क्यों ...क्या? पापा कुछ भी नहीं पूछ पाए।

"आई एम सॉरी सिस्टर, मैं बहुत शर्मिंदा हूँ।" कहकर हाथ जोड़ दिए।

"अपनी बेटी को घर ले जाइए, उसका पेपर कैंसिल हो गया है। दो दिन बाद उसे अलग बैठकर दूसरे प्रश्न पत्र के उत्तर लिखने होंगे।"

कॉरिडोर से गुज़रती एक दूसरी टीचर ने भरी-भरी आँखों से सारा नज़ारा देखा- प्रिंसिपल ऑफ़िस के बाहर अपराधी मुद्रा में सर झुकाए खड़ी बुलबुल.... उसके पापा का आना... प्रिंसिपल के चेहरे पर नाराज़गी के भाव.... शर्मिंदगी लिए पापा का ऑफ़िस से बाहर निकलना... सब कुछ। उस टीचर से आँखें मिलते ही बुलबुल ने नज़रें झुका लीं...।

बारह साल की बच्ची के लिए वह ज़िन्दगी का सबसे कठिन और लम्बा दिन था। सबसे मुश्किल था घर आकर माँ के आँसुओं से तर चेहरे का सामना करना। विश्वास जितना मज़बूत होता है, ठेस उतनी ही गहरी लगती है। जी भर रो लेने के बाद माँ ने उसे बाँहों में भर लिया और बैठकर समझाया ईमानदारी का पाठ। नन्हे चूज़े की तरह माँ के सीने से लिपटी वो देर तक सुबकती रही। माँ के संदली स्पर्श से बुलबुल के कलेजे का ताप कुछ ठंडा हुआ। दो दिन बाद कंप्यूटर की परीक्षा दी और ठीक-ठाक नम्बरों से पास हो गई पर सालों तक मन में एक फाँस चुभी रही।

जब-जब मिसेज़ डेविड को देखती, अपनी ग़लती याद आ जाती। मिसेज़ डेविड ने ही उस दिन उसे चिट के साथ पकड़ा था और प्रिंसिपल ऑफ़िस ले गई थीं।

दो साल बाद मिसेज़ डेविड ही उसकी क्लास टीचर बनीं। ऑल राउंडर स्टूडेंट होने के बावजूद उन्होंने कभी उसे ए ग्रेड नहीं दिया। शायद अतीत की उसकी ग़लती मिसेज़ डेविड की क़लम को रोक लेती थी। मन-ही-मन बुलबुल कुंठित होने लगी... क्या मिसेज़ डेविड ने उसे आज तक माफ़ नहीं किया!

माँ-पापा दिलासा देते।

"बेटा मेहनत करती जाओ एक दिन

फल ज़रूर मिलेगा।"

कच्ची उम्र की वो लड़की लड़खड़ाते हौसले से टूटे आत्मविश्वास के टुकड़ों को समेटती... उम्मीद की डोर थामे आगे बढ़ जाती पर नहीं जानती थी इस ग़लती के कारण अभी उसे कई दंड झेलने हैं। दो नायाब मौक़े उसने खो दिए, हाउस कैप्टन बनने और स्टूडेंट काउंसिल में चुने जाने के। दोनों बार योग्यता होने के बावजूद उसका चयन नहीं हुआ। वो मनहूस घटना उसके नाम के साथ चस्पाँ हो गई थी।

माँ के लिए वो दिन बहुत पीड़ादायक था जब सत्रह साल की बेटी उनकी गोद में सर छुपाकर फूट-फूटकर रो रही थी। आज स्टूडेंट काउंसिल में चुने गए छात्रों की घोषणा होनी थी।

"आई एम सॉरी माँ!....आज भी ...।"

"बेटा, धीरज धरो, मेरा दिल कहता है तुम्हारी सारी मेहनत का फल एक दिन ज़रूर मिलेगा, तब तक ज़िन्दगी तुम्हें सिखा रही है, उस एक ग़लती के थपेड़े तुम्हें मज़बूत... और मज़बूत बना रहे हैं।"

"एक बार फिर अपने आँसू पोंछकर बुलबुल जीवन पथ पर चल पड़ी। कुछ साल बीत गए। अब वो मीडिया में मास्टर्स करने के बाद एक अच्छे मीडिया हाउस में कार्यरत थी।

दशहरे की छुट्टियों में अपने शहर कोलकाता आई। माँ-पापा के साथ पूजा-पंडालों में ख़ूब घूमी। एक शाम अचानक स्कूल फ्रेंड वैभवी से मुलाक़ात हुई जो उससे दो साल सीनियर थी, पर एक ही हाउस में होने के कारण दोनों में अच्छी पटती थी। बरसों बाद मिलीं तो एक-दूसरे से लिपट गईं। कुछ और पुरानी सहेलियाँ भी दुर्गा पूजा में घर आई हैं, वैभवी ने बताया और री-यूनियन का प्लान बना।

अगली शाम पाँच सहेलियाँ 'बर्बेक्यू नेशन' की कोने वाली टेबल पर जमी थीं। स्कूल की खट्टी-मीठी यादों से टेबल गुलज़ार थी। तभी वैभवी कुछ गम्भीर हो गई-

"यार, मुझे कुछ कन्फ़ेस करना है।"

सब उसकी ओर ताकने लगीं।

"पता है बुलबुल! तुम्हारी तरह मैंने भी एक बार हाफ़ इयरली एग्ज़ामिनेशन में चीटिंग की थी पर तुम्हारी तरह मुझे किसी ने लेबल नहीं किया, मुझ पर कोई ठप्पा नहीं लगा। मेरी इन्विजिलेटर मिसेज़.... ने नोटिस किया और चुपचाप मेरे चिट्स लेकर मुट्ठी में दबा लिए। किसी को पता नहीं लगने दिया, न ही मेरी शिकायत की। मैं डर के मारे थरथर काँप रही थी, उन्होंने कंधे पर हाथ रखते हुए मुझे दूसरी शीट दी और फिर से लिखने का इशारा किया। अगले दिन चैपल में बुलाकर मुझे समझाया। यदि यह बात किसी को पता लग जाती, मैं दाग़दार हो जाती तो क्या स्कूल प्रेसिडेंट बन पाती? आज एक कामयाब लॉयर हूँ, क़ानून को समझती हूँ, किसी को लेबल कर देना भी मानवता के प्रति अपराध है। आज मैं जो कुछ भी हूँ मिसेज़.... की वजह से।" भावावेश में वो आगे बोल नहीं पाई।

वैभवी की ग़लती को छुपाने वाली स्कूल की दूसरी टीचर का नाम सुनकर बुलबुल सकते में आ गई, पलभर को दिल धक से रह गया जैसे जायंट व्हील के ऊपर

से नीचे आने पर रह जाता है, पर दूसरे ही पल ऊपर की उड़ान भरने से रोमांचित हो उठता है। उसका हैरान-परेशान मन पुलक से भर उठा।

"तुम कितनी लकी हो वैभवी!" कहते हुए बुलबुल की आँखों में आँसू आ गए। उन आँसुओं में गौरव की चमक थी। वैभवी ने उठकर उसे गले लगा लिया।

अपने भाषण में पहली बार लिपिका ने विराम लिया, उसकी आवाज़ भर्रा गई थी, आँखें धुँधला गईं। ख़ुद को संयत करने के लिए वो कुछ क्षण रुकी फिर मुस्कुराते हुए बोली-

"दोस्तो! मेरी कामयाबी का मूल मन्त्र है- मानवता और ईमानदारी। भले ही आज कछुए और ख़रगोश की कहानी के मायने बदल गए हैं। लोग ख़रगोश को अपना हीरो मानने लगे हैं पर मेरा आदर्श आज भी ईमानदार कछुआ है। एक बड़े कवि ने कहा है-

जहाँ लोग पहुँचे छलाँगें लगाते,
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।

...जीवन की राह रपटीली है, ज़रा भर चूके कि गए...। छोटी-सी भूल का कभी-कभी बहुत बड़ा ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ता है, बुलबुल की तरह। हम सब ग़लतियों के पुतले हैं, ज़िन्दगी की रेस में आगे निकलने की होड़ में कभी-कभी गिर जाते हैं पर गिरे हुए को उठाना ही मानवता है। इसी के आगे मानवाधिकार शुरू होता है। हर लड़की वैभवी की तरह ख़ुशक़िस्मत नहीं होती जिसे मिसेज़ डेविड की बजाय दूसरी टीचर मिलीं।"

अगला वाक्य वह फुसफुसाकर बोली-

"अब एक राज़ की बात दिल थाम कर सुनिए!"

"मेरी कहानी की बुलबुल आपके सामने खड़ी है- लिपिका चक्रवर्ती यानी मैं", कहते हुए उसने दोनों बाँहें खोलकर फैला दीं।

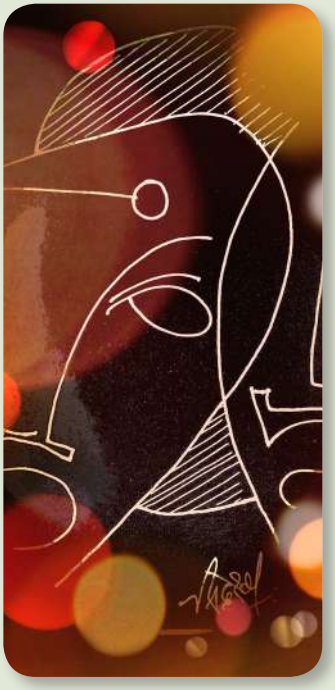
"...और, वैभवी को लेबल होने से बचाने वाली दूसरी टीचर यहाँ से हज़ारों मील दूर मेरे घर में बैठी है... मिसेज़ चक्रवर्ती यानी मेरी माँ! जो मेरे ही स्कूल में पढ़ाती थीं।"

अब तक एकाग्रता से सुन रहे दर्शकों में अचानक हलचल-सी मच गई।

"जी हाँ दोस्तो! वह दूसरी टीचर मेरी माँ थी... जिसे आज इस मंच पर खड़े होकर मैं सलाम करती हूँ और अपना अवॉर्ड मानवता की मिसाल मिसेज़ चक्रवर्ती को समर्पित करते हुए कहती हूँ-

"माँ! उस दिन मैंने आपको बहुत रुलाया था ... आपका सर झुकाया था, सालों बाद फिर से एक बार आपकी आँखें बरसेंगी ...पर अबकी ख़ुशी से...। आई लव यू माँ! यू आर द बेस्ट टीचर!... द बेस्ट ह्यूमन बीइंग!"

सारे श्रोता तालियाँ बजाते हुए लिपिका को स्टैंडिंग ओवेशन दे रहे थे। ❑



बिखरे मधुर सुगंध

उगे-बढ़े या फिर घटे, कटुता अथवा प्यार
रिश्तों का आधार है, आपस का व्यवहार।

बिखर गए फिर खो गए, यत्र तत्र सर्वत्र
ख़ुशियाँ सुख वो क़हक़हे, चलो करें एकत्र।

अपनेपन का जब हुआ, रिश्तों में फैलाव
'गूँगे का गुड़' बन गए, मन के अनगिन भाव।

सुख-दुख से ऊपर उठीं, जीकर हर वैराग्य
इच्छाओं को जब मिला, विरल सन्त-सौभाग्य।

मन ने पूछा देखकर, अद्भुत दृश्य पुनीत
नभ पर किसने लिख दिए, स्वर्ण सुगंधित गीत।

उगना, चढ़ना, डूबना, सभी समय अनुरूप
सूरज-सी यह ज़िन्दगी, जिसके अनगिन रूप।

हल न मिला इस प्रश्न का, समझ न आया मर्म
बड़ा जगत में कौन है, भाग्य, समय या कर्म।

चलो मिटाने के लिए, अवसादों के सत्र
फिर से मिलजुल कर पढ़ें, मुस्कानों के पत्र।

उसका निश्चित अंत है, जिसका है आरम्भ
पगले फिर क्यों पालता, भीतर इतना दम्भ।



योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'
ई-मेल : vyom70@gmail.com

मिलती निश्चित सफलता, और नया उत्कर्ष
जब अवसर की सीढ़ियाँ, चढ़ता है संघर्ष।

घुल-मिलकर व्यक्तित्व में, बिखरे मधुर सुगंध
पढ़कर तो देखो कभी, सच के ललित निबंध।

मूल्यहीनता से रही, इस सच की मुठभेड़
जड़ से जो जुड़कर जिए, हरे रहे वे पेड़।

कर्कश तर्क-कुतर्क का, हो न कभी अतिरेक
दृष्टिकोण निरपेक्ष हो, जागृत रहे विवेक।

कोशिश रहे न हों कभी, आहत मन या लोग
इसीलिए हो सोचकर, शब्दों का विनियोग।

उम्मीदें, अपनत्व भी, कभी न होंगे ध्वस्त
लहजा, बोली, सोच हो, अगर न लकवाग्रस्त।

क्षमता का उपयोग कर, उड़ जा पंख पसार
सपनों के आकाश का, अंतहीन विस्तार।

मर्यादित मतभेद हों, बना रहे व्यवहार
कोशिश रहे न पा सकें, मनमुटाव विस्तार।

स्वाभिमान अनिवार्य है, नहीं तनिक संदेह
किन्तु न जर्जर हो कभी, अनुशासन की देह।

अपनों में होती कहाँ, कभी जीत या हार
पर अनुशासनहीनता, कौन करे स्वीकार।

अपनापन हर घर मिला, यत्र-तत्र-सर्वत्र
मन से जब सबने पढ़े, प्रेम, त्याग के पत्र।

तब तक ही अपनत्व की, घुलती रही मिठास
जब तक रिश्तों में रहा, स्वार्थ रहित विश्वास।

शब्द रहित कुछ यों हुई, मन-से-मन की बात
भीतर भीषण बाढ़ थी, आँखों में बरसात।

रिश्ते-नातों में बढ़ा, कई गुना आनंद
दोषमुक्त जब हो गए, व्यवहारों के छंद।

यादें भी करने लगीं, भावों का अभिषेक
खुले हृदय की डायरी, के जब पृष्ठ अनेक।

मन्त्र, शाप, गाली, दुआ, नफ़रत, ममता, प्यार
संगत की रंगत रँगा, शब्दों का व्यवहार।

हर पल जिनमें हो रहा, कर्मों का उल्लेख
रोज़नामचा गढ़ रहा, साँसों के अभिलेख।

चलो करें कुछ कोशिशें, मिलकर ऐसी मित्र
आने वाला कल बने, उजला और पवित्र।

निजी स्वार्थ सब त्यागकर, अब तो समझो मीत
पेड़ों में भी बज रहा, साँसों का संगीत।

कहीं रही ना आपसी, शेष हार या जीत
लिखे समय के पृष्ठ पर, रिश्तों ने जब गीत। ❑



समय के शिलालेख पर

कुछ मित्र मिलते हैं
जुगनुओं की तरह,
जिन्हें सहेज लेना चाहते हैं
हम अपनी हथेलियों में,
लेकिन वे अपनी चमक
फैलाने निकल जाते हैं
हमेशा के लिए दूर

कुछ मित्र मिलते हैं
ठंडी हवाओं की तरह
जो आपको छूकर
चले जाते हैं
अनंत दिशाओं में,
रह जाती हैं बस
उनकी खट्टी-मीठी यादें

कुछ मित्र मिलते हैं
नीले समंदर की तरह
रंगते हैं अपने रंग में,
उमड़ कर जताते हैं प्यार
बहा ले जाते हैं दुख
छोड़ जाते हैं ख़ुशियाँ,
फिर समय के साथ
खो जाते हैं शान्त लहरों में



संजय स्वतन्त्र
ई-मेल : sanjayswatantra111@gmail.com

कुछ मित्र होते हैं
हरे-भरे वृक्ष की तरह
देखकर आपको
मुस्कुराते हैं हौले से,
गिराकर अपनी पत्तियाँ
देते हैं शुभाशीष
आगे बढ़ते जाने का,
अडिग रहना और जीना
सिखाते हैं हर मौसम में

कुछ मित्र चले आते हैं
पूर्णिमा का चाँद की तरह
बड़े-बुजुर्गों की तरह
जो रखते हैं ख़याल
बच्चों-सा आपका
और एक दिन चल देते हैं
आपको बड़ा बनाकर
बन जाते हैं आँखों के तारे,
फिर गुम हो जाते हैं
कहीं और आभा फैलाने

कुछ मित्र आते हैं,
उगते सूरज की तरह,
जीवन संघर्ष में चलते हैं
हर संध्या बेला तक,
फिर विदा लेते हैं
इस विश्वास के साथ कि
अगली सुबह फिर मिलेंगे
नई उम्मीदें लेकर...

समय के शिलालेख पर
लिख रहा हूँ मैं आज
उन मित्रों के नाम



जो एक-एक कर
चले गए छोड़ कर

मैं चाहता हूँ कि
लौट आएँ वे सभी,
आँखों में फिर से चमकें
जुगनुओं की तरह ताकि
सहेज लूँ मैं उन्हें
कभी न जाने देने के लिए

भोर की लाली की तरह
लौट आएँ वे हर दिन,
भर दें उम्मीदों की रश्मियाँ,
नदियों-समंदर-सा लहराएँ
और काग़ज़ पर उतर जाएँ
प्रेम कविताएँ बन। ❑

क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ

क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ
यदि

पत्थरों से माँगता हूँ
चिंगारी भर आग

तितली से माँगता हूँ
चुटकी भर रंग

महबूबा से माँगता हूँ
विश्वास भर प्रेम

शिशुओं से माँगता हूँ
स्मृति भर किलक

पूर्वजों से माँगता हूँ
पृथ्वी की तबाही के लिए क्षमा

क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ
यदि

मछलियों से माँगता हूँ
तैरने का राज़

कोयल से माँगता हूँ
गीत का अंदाज़



सुशांत सुप्रिय
ई-मेल : sushant1968@me.com

साहित्य से माँगता हूँ
जीवन का साज़ ...।

दरअसल

मुझे लगा था
मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ
बरसों से साथ रहते आए थे
हम दोनों

मैंने अपनी उँगलियों के पोरों से
उसके अंगों को जिया था
मैंने उसकी गुलाबी त्वचा को
अपने होठों से छुआ था

पर मैं उसके ज़हन की लकड़ियों
के नीचे दबी सुलगती आग से
अनभिज्ञ था

एक दिन वह चली गई
मेरी हिलती-थरथराती अलगनी को
सूना छोड़कर

तब मैंने जाना
कि दरअसल वह तो
किसी सुदूर आकाश-गंगा से आता
कोई विरल-संकेत मात्र थी

कि दरअसल वह तो
समय की गुफा में उकेरी गई
किसी प्रागैतिहासिक भित्ति-चित्र की
अध-मिटी प्रस्तुति मात्र थी ... ❑





संजीव प्रभाकर
ई-मेल : sanjeevprabhakar2010@gmail.com

उसको पता हर बात

यूँ ही नहीं चुप-चाप है, उसको पता हर बात है,
देना किसे किस चाल से किस वक़्त शह और मात है

अच्छा-बुरा दोनों मिले तब ये कहीं दुनिया बनी,
हर एक का ज़्यादा न कम तय एकदम अनुपात है

हर चीज़ है इस जिस्म में जिससे बनी है कायनात,
यूँ ही नहीं ये ज़िन्दगी सबसे बड़ी सौग़ात है

हर चीज़ का औचित्य है, अभिप्राय है हर एक का,
उसमें हैं हम, हम में है वो, अपनी भी कुछ औक़ात है

जिसने हमें सूरज दिया चन्दा दिया तारे दिए,
वो आज तक अज्ञात है, अज्ञेय है, ये ज्ञात है।

इंतिहा की इंतिहा

देखिए ये ही कभी, सब निकालेगा क़सर,
यूँ ही चलता जो रहा, ये जो है ज़ेरो-ज़बर

दूसरा कोई नहीं, है मुझे एक ही डर,
बोझ कंधे का कहीं, तोड़ डाले न कमर

मैं इसी बात पे चुप रह गया, आज न कल,
एक दिन होगी उसे मेरी चीख़ों से असर

इंतिहा की भी कोई इंतिहा होगी कहीं,
हो न हो इल्म हमें हो न हो हो न ख़बर

फ़िक्र करने का मेरे फ़ायदा कुछ न हुआ,
मेरी होती ही रही जैसे होनी थी बसर। ❑

प्रवासी पंजाबी कहानी

हाथों से झरती रेत



रविन्दर सिंह सोढी

पंजाबी भाषा के लेखक के रूप में प्रतिष्ठित। साहित्य की विभिन्न विधा पर 14 पुस्तकें प्रकाशित। पंजाब पब्लिक स्कूल, नाभा से एचओडी, पंजाबी विभाग से सेवानिवृत्त।

अनुवाद

नव संगीत सिंह



ई-मेल : navsangeetsingh1957@gmail.com

जब गुरी की छोटी बहन सैमी घर आ रही थी तब गुरी और नतालिया कार में बैठकर बाहर जा रहे थे।

नतालिया के साथ अपने भाई को देखकर उसने नाक-मुँह सिकोड़ा। जब नतालिया की नज़र सैमी पर पड़ी, तो उसने अपना हाथ हिलाया और उसका अभिवादन किया, लेकिन सैमी ने कोई जवाब नहीं दिया और घर के अंदर चली गई।

नतालिया उसके इस व्यवहार से बहुत हैरान हुई और उसने गुरी से पूछा, "गुरी, वाह्ट हैपन्ड टु योअर सिस्टर? आइ वेवड टु हर, बट शी इग्नोरड!"

"फ़ारगेट अबाउट हर। शी'ज़ मैड!" गुरी ने नतालिया के लिए कार का दरवाज़ा खोलते हुए कहा।

सैमी अभी घर के अंदर ही गई थी जब उसकी माँ ने उसे देखा और ग़ुस्से से कहा, "तुम आज भी लेट आई हो? क्या तुम समय पर नहीं आ सकती?"

सैमी, जो गुरी और नतालिया को एक-साथ देखकर पहले से ही ग़ुस्से में थी, ने कहा, "मुझे गुरी की तरह कार तो लेकर नहीं दी है। बसों में धक्के खाती आती हूँ। दस-पन्द्रह मिनट देर क्या हो जाए, पूछताछ शुरू हो जाती है।"

ऐसा उत्तर सुनकर माँ को ग़ुस्सा आ गया और उसने सैमी से कहा, "एक तो चोर, साथ में चतुर भी! जब कमाओगी तब गाड़ी भी ले लेना। तुम तो अभी अपने

माता-पिता के सिर पर ऐश कर रही हो।"

"ऐश मैं नहीं, गुरी कर रहा है। वह कहाँ एक जगह टिककर काम करता है? वह गोरी के साथ घूमने के लिए कभी सौ, कभी दो सौ डॉलर माँगता ही रहता है।"

उसने अपना बैग सोफ़े पर फेंकते हुए कहा।

"आज किसी से लड़कर आई हो क्या? घर आते ही झगड़ा शुरू कर दिया। झगड़ालू कहीं की! भाई को देखकर जलती है?" माँ सैमी के रंग-ढंग देखकर डर-सी गई।

सैमी ने फ्रिज से जूस की एक बोतल निकाली और एक गिलास में डालते हुए कहा, "यदि सच कहूँ तो झगड़ालू ही समझो। जब गुरी लंडर-सी नतालिया के साथ घर आता है तो तुम उन दोनों के आगे-पीछे घूमते हो, तुम भी और डैड भी। क्या तुम्हें पता है, वह गुरी से पहले भी दो-तीन बॉयफ्रेंड्स के साथ रहती रही है! क्या तुमने कभी गुरी को रोका? हर चौथे दिन उसे घर लाने का क्या काम?" सैमी आज बदला लेने के मूड में थी।

दरअसल, कई दिनों से वो अपने मॉम-डैड की पाबंदियों के कारण बहुत दुखी थी। जब भी वह पैसे माँगती थी, तो उसे कई बातें सुननी पड़ती थीं। फ़ार्मेसी की मुश्किल पढ़ाई के कारण वह बहुत ज़्यादा काम नहीं कर सकती थी। वह अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए बैंक से क़र्ज़ लेने की बात करती, तो उसके माता-पिता लड़ने को आते। उनका कहना था कि अन्य लड़कियाँ भी हैं, जो पढ़ती भी हैं और अपना ख़र्च चलाने के लिए साथ-साथ काम भी करती हैं। वे अपने घर की बेसमेंट में रहने वाली तीन लड़कियों की मिसाल देते कि वे अपनी फ़ीस कैसे भरती हैं? वे खाने-पीने की व्यवस्था भी करती हैं और किराए के लिए भुगतान भी। सैमी अपने दिल में सोचती है कि वह उनसे पूछें तो सही कि वे अपना समय कैसे व्यतीत करती हैं? वे जहाँ काम करती हैं, वहाँ उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है? उन्हें मजबूरी में क्या कुछ नहीं सहना पड़ता। वे कई बार सैमी से अपने दिल की बात कह चुकी हैं कि कनाडा, ऑस्ट्रेलिया जैसे देश-विदेशों के छात्रों के लिए क़ैद के समान है। यहाँ की तस्वीरें ही अच्छी लगती हैं, असलियत का पता तब चलता है जब कोई व्यक्ति यहाँ आकर फँसता है। ऐसा कौन-सा काम है जो यहाँ नहीं करना पड़ता? जो लोग बाप से भी बड़ी उम्र के होते हैं, वो भी अपनी गर्लफ्रेंड बनाने की ज़िद करते हैं। जिनको पशुओं की तरह बेसमेंट में रहना पड़ता है, उनकी ग़ुलामी भी करो। दो दिन किराया लेट हो जाए, तो घर से निकाल देने की धमकी देते हैं। बिजली, हीटर का ख़र्चा अलग से भरो, लेकिन फिर भी बड़बड़ाते रहेंगे। ये आँटियाँ तो तबीयत ख़राब होने का बहाना बनाकर घर का काम भी करवाती हैं। अगर किसी लड़की से कोई परिचित लड़का मिलने आ जाए, तो हँगामा करने से भी नहीं हिचकिचातीं। कहीं ऊँची आवाज़ में बात करो या टीवी चालू करो तो लड़ने को आते हैं। खुद चाहे उनके घरों में सारा दिन महाभारत चलती रहे। कई बार तो ये आँटियाँ ही लड़कियों को ग़लत रास्ते पर डाल देती हैं।

सैमी को पता था कि वह अभी अठारह वर्ष की नहीं थी, इसीलिए वह अपने माता-पिता की सहमति के बिना छात्र-ऋण लेने के योग्य नहीं थी। वह अपने घर के घुटन भरे माहौल से बहुत ऊब चुकी थी। उसे बहुत खीझ होती जब वह देखती कि उसका बड़ा भाई अपनी गर्लफ्रेंड नतालिया के साथ सरेआम घूम रहा है और बिना किसी डर के उसे घर भी ला रहा है। उस समय उसके मॉम-डैड के चेहरे की रौनक़ देखने लायक़ होती है। वे दोनों उस गोरी के आगे-पीछे घूमते हैं। डैड तो दो-तीन बार गुरी और नतालिया के साथ बैठकर पैग भी लगा चुके थे लेकिन वे यह भी जानते थे कि कुछ गोरी लड़कियाँ देसी लड़कों को इसीलिए अपने जाल में फँसा लेती हैं, ताकि उनके पैसे पर ख़ूब ऐश कर सकें क्योंकि गोरे लड़के तो अपनी गर्लफ्रेंड्स से बराबर का ख़र्च करवाते हैं। उन्होंने एक-दो बार बातों-बातों में गुरी को समझाया भी था कि कहीं कोई उल्टी-सीधी बात न हो जाए।

डैड ने कभी ट्रक तो कभी टैक्सी चलाई थी, टैक्स चोरी करके दो मकान बनाए थे। गुरी ने शेख़ी-शेख़ी में नतालिया को सब कुछ बता दिया। डैड चिन्तित थे कि कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ। गुरी कॉलेज के अंतिम वर्ष में था और पढ़ाई में भी ठीक-ठाक था, लेकिन नतालिया के प्यार में लट्टू उसे किसी तरह की परवाह नहीं थी।

सैमी अक्सर अपनी सहेलियों से इस बारे में बातचीत करती थी कि उनके अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे माँ-बाप लड़का-लड़की में फ़र्क़ क्यों करते हैं? इन्होंने अपने लड़कों को तो पूरी तरह से ढील दे रखी है और जब इस ढील की वजह से बात बिगड़ जाती है तो माथे पर हाथ मारकर रोते हैं। यही नहीं, ये अपनी जवान हो रही लड़कियों पर कई तरह की बंदिशें लगाते हैं। स्वतन्त्र माहौल में पली-बढ़ी लड़कियों को यह समझ नहीं आती कि अगर उनका भाई अपनी गर्लफ्रेंड को घर में ला सकता है तो लड़कियाँ अपने बॉयफ्रेंड को क्यों नहीं? जब वे अपनी हमउम्र गोरी लड़कियों को बेरोक-टोक घूमते देखतीं तो सोचने पर मजबूर हो जातीं कि लड़कियों की आज़ादी के समय उनके माँ-बाप को पता नहीं क्या साँप सूँघ जाता है?

कई गोरी लड़कियाँ तो इसी बात से देसी लड़कियों से नफ़रत करतीं। अपनी कई देसी सहेलियों को जानती थीं जिन्होंने अपने पिछड़े घरेलू माहौल के कारण बाहर जान-बूझ कर पूरी आज़ादी ली। शारीरिक खुलेपन की तो किसी को परवाह ही नहीं थी। कभी किसी बहाने, तो कभी किसी, उन्होंने अपने बॉयफ्रेंड्स के साथ दिन बिताए। अक्सर ही लड़कियाँ ऐसी कुसंगत में चली जाती हैं, जहाँ पर उन्हें नशे की लत लग जाती है। ऐसा वे युवा जोश के साथ-साथ उनके अपने माता-पिता से बदला लेने के लिए भी करतीं। नशाख़ोरी करने के लिए वे घर से पैसों की चोरी करतीं, अवसर मिलने पर माँ-बाप के क्रेडिट कार्ड का दुरुपयोग करने से भी नहीं हिचकिचातीं। उस समय परिवार को यह समझ न आता कि वह गहनों या पैसों के डूब जाने का अफ़सोस करें या समाज में अपनी

कटी हुई नाक को बचाने के लिए कुछ करें। यद्यपि सैमी ने अभी तक कोई ऐसा क़दम नहीं उठाया था, तो भी कई बार उसके ज़ेहन में आता कि वह अपने माता-पिता को उनकी सख़्ती का मज़ा ज़रूर चखाए।

वह यह सब कर सकती थी, अगर वह 18 साल की हो गई होती। अब तो वह सिर्फ़ माँ से ऊँचा-नीचा बोलकर दिल का ग़ुबार निकाल लेती थी। उसने अभी तक पिता के सामने अपना मुँह नहीं खोला था, लेकिन एक-दो बार उसने नशे में धुत अपने पिता को ज़रूर खरी-खरी सुनाई थी।

एक दिन जब उसके पिता दो-चार पैग लगाकर ऊल-जलूल बकने लगे तो उसने पिता को काफ़ी फटकारा और अपनी भड़ास निकाली। इसी तरह जब एक बार गुरी ने ग़ुस्से में उसके ऊपर हाथ उठाने की जुर्रत की तो सैमी ने उसे ख़बरदार किया कि वह ज़बान से बात करे और यदि उसने उसके ऊपर हाथ उठाया तो वह पुलिस बुला लेगी। इससे उसकी माँ डर गई और उसने सैमी को बड़ी मुश्किल से शान्त किया। बाद में बेशक, माँ ने सैमी को धमकी भी दी कि अगर उसने फिर से ऐसी बात कही, तो उसे अपनी सम्पत्ति से बेदख़ल कर दिया जाएगा। डराने के लिए माँ ने सैमी से यह भी कहा कि वह उसे हिन्दुस्तान ले जाएँगे और उसकी शादी करके उसे वहीं छोड़ आएँगे। इस तरह की धमकियों को सुनकर सैमी एक बार तो चुप हो गई। उसने इस बारे में अपनी एक बहुत क़रीबी सहेली से बात की। उसने सैमी को समझाया कि अगली बार जब कभी फिर से उसे कोई हिन्दुस्तान ले जाने की धमकी दे, तो वह निडर होकर बोल दे कि, "वह लड़के वालों को साफ़-साफ़ कह देगी कि यह शादी उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो रही है और वह कनाडा जाते ही उसे तलाक़ दे देगी, शादी तो उसे अपने बॉयफ्रेंड से ही करनी है।"

मौक़ा मिलते ही सैमी ने यह बात अपनी माँ को कह सुनाई। यह सुनकर उसकी माँ ने ग़ुस्से में उसके बाल तो नोचे ही, साथ-साथ उसके थप्पड़ भी जड़ दिए। ग़ुस्से में पागल सैमी ने अपने सेल फ़ोन से 911 नम्बर डायल कर दिया। शुक्र है कि उस समय उसके पिता घर पर ही थे, उन्होंने बड़ी मुश्किल से दोनों को सम्भाला।

अपने कमरे में जाने से पहले सैमी ने अपनी माँ को धमकी देते हुए कहा, "मेरे कामों में ज़्यादा दख़्लअंदाज़ी करने की ज़रूरत नहीं है। मैं अपना भला-बुरा ख़ुद समझती हूँ। अगर तुमने सख़्ती करने की कोशिश की, तो और छह महीनों बाद मैं तुम्हें कहीं मुँह दिखाने लायक़ नहीं छोड़ूँगी।" यह कहकर वह पैर पटकती हुई चली गई।

सैमी की माँ सोचने लगी कि इस मुँहज़ोर और ग़ुस्सैल लड़की का क्या किया जाए! वह उन दिनों को पछताने लगी, जब वे लोग कनाडा आए थे। वह सोच रही थी कि कनाडा की धरती पर बच्चों को मिली आज़ादी ने तो उन्हें बर्बाद करके रख दिया है। माँ-बाप तो सिर्फ़ इनको पालने में ही लगे रहते हैं। आज के बच्चे तो उड़ने योग्य होते ही अपना घोंसला तलाशने लगते हैं। माता-पिता गिरें किसी कुएँ में, उनकी बला से।

वह इन्हीं विचारों में खोई हुई थी कि कब सैमी का पिता, निहाल सिंह आकर उसकी बग़ल वाले सोफ़े पर बैठ गया, उसे पता ही नहीं चला। कुछ खाँसते ही उसका ध्यान उसकी ओर गया। अपने पति को सोफ़े पर बैठा देख आश्चर्य से उसने पूछा, "आज इतनी जल्दी आ गए? कैसे हैं? ठीक तो हैं न आप?"

"हाँ, ठीक हूँ, मन कुछ विचलित-सा है। टैक्सी चलाने को मन नहीं किया।" निहाल सिंह ने धीमी आवाज़ में कहा, "लेकिन तुम कहाँ खोई हुई थी? तुम्हें मेरे आने का पता तक नहीं चला। तुम तो बड़ी दूर से मेरे क़दमों की आहट सुन लेती हो!"

"कैसा खोना! ये संतान ही जीने नहीं देती।" उसने सिसकते हुए कहा।

"क्यों, आज ऐसा क्या हो गया?" निहाल सिंह ने कुछ चिन्तित होते हुए कहा।

"यदि गुरी को किसी बात से रोकती हूँ, तो वह बाल नोचने को आता है। यदि बेटी को थोड़ा-बहुत समझाती हूँ, तो वह ऊँचा-नीचा बोलती है। मुझे समझ में नहीं आता कि जाऊँ तो कहाँ जाऊँ!"

निहाल सिंह ने इधर-उधर देखा और धीमे-से बोला, "बच्चे घर में ही हैं क्या?"

"वह गोरी के साथ कहीं गया है। सैमी देरी से आई तो मैंने पूछ लिया कि लेट क्यों हो गई? इस वजह से मुझे इस नवाबज़ादी से खरी-खोटी सुननी पड़ी।"

"सैमी अब कहाँ है?"

"अपने कमरे में।"

निहाल सिंह ने उसे चुप रहने का इशारा किया। वह थोड़ा चिन्तित होकर बोला, "सुनो, अब बच्चों को कुछ भी कहने का समय नहीं है। मैं भी पहले-पहल सैमी को बात-बात पर डाँट दिया करता था परन्तु आज की ख़बर सुनकर तो मैं स्तब्ध रह गया।"

"क्या हुआ?" गुरनाम कौर ने घबरा कर पूछा।

"वाहेगुरु वाहेगुरु! आजकल के बच्चों का तो रब ही राखा है। सभी टैक्सी स्टैंड वाले उदास-से बैठे हैं आज तो।" निहाल सिंह ने बताया।

"पर हुआ क्या?" गुरनामो ने निहाल सिंह का चेहरा देखते हुए पूछा।

"वह मेरा दोस्त है न जमरौद वाला पाला सिंह, जो मेरे साथ ही टैक्सी चलाता है।"

"हाँ, जिसकी बीवी कई बार हमें गुरुद्वारा में भी मिली है, उसे क्या हुआ?"

"उसे कुछ नहीं हुआ। उसने अपनी बेटी को किसी बात पर डाँट दिया। शायद दो-चार घूँसे भी मारे होंगे। बेटी ने पुलिस बुला ली और अंदर करवा दिया और ख़ुद घर से निकल कर किसी गोरे के साथ भाग गई।"

"हाय, मैं मर जाऊँ! ऐसी औलाद से तो बेऔलाद रहना ही अच्छा!" गुरनामो के मुँह से निकला।

"कुछ मत पूछो, गुरनामो! मुझे तो यह सुनकर टैक्सी स्टैंड पर बैठने का मन नहीं हुआ। मैं तो सीधे घर चला आया।" उसने सोफ़े से उठकर एक गिलास पानी पीते हुए कहा।

कुछ देर दोनों में से कोई कुछ नहीं

बोला।

"पाले की बातें सुनकर मैंने तो कानों को हाथ लगाया कि आगे से इन दोनों को कुछ नहीं कहना।"

"बेशक यह हमारे सर पर मिट्टी डाल दें? अरे, ये क्या बात हुई! इन्हें तो कुछ फ़र्क़ ही नहीं पड़ता। बच्चों को ग़लत कामों से तो रोकना ही पड़ता है न! नहीं तो ये हमारे सरों में छेद करेंगे।"

"यह देख लो, बेचारे पाले को बेटी की रोका-टोकी करने पर क्या नतीजा भुगतना पड़ा। इन देशों का तो रब ही राखा है!"

"छोड़ो, ऐसे देश को! अपनी जुल्ली-तप्पड़ बेचो, चार पैसे हाथ में करो और वापस गाँव चलते हैं। वहाँ रूखी-सूखी खा लेंगे।" गुरनाम कौर ने अपनी ओर से बड़ी समझदारी की बात की।

निहाल सिंह ने गुरनामो की ओर देखते हुए कहा, "अब वहाँ गाँव में क्या है हमारा! पहले तो भाइयों से कहा-सुनी करके ज़मीन का बँटवारा कर लिया और उसे बेच डाला। तुमने तो टूटे हुए घर के भी पैसे ले लिए थे। अब भाई हमें मुँह नहीं लगाएँगे।"

"साथ ही, वहाँ के हालात अब यहाँ से भी ज़्यादा बुरे हैं। जो लोग वहाँ जाकर आते हैं, वे कानों को हाथ लगाते हैं कि वे फिर से पंजाब वापस नहीं जाएँगे। नशा बाढ़ की तरह बिक रहा है, रिश्वत के बिना कोई काम नहीं होता। वहाँ अब किसी की कोई सुनवाई नहीं होती। यहाँ हम इज़्ज़त की रोटी तो खा रहे हैं।"

"तो क्या अब पाला अंदर बैठा इज़्ज़त की रोटी खा रहा है?" गुरनामो ग़ुस्से में बोली।

"कभी-कभार ठंडे दिमाग़ से भी काम ले लेना चाहिए! हम वहाँ से यहाँ हज़ार गुना बेहतर हैं! दोष तो ख़ुद हमारे में है। रहते हम कनाडा में हैं, लेकिन हमारी सोच गाँव वालों जैसी है। हमें ख़ुद को बदलना होगा।" निहाल सिंह ने लम्बी साँस भरते हुए कहा।

"हमारी तो जून ही बुरी है। पहले तो मैंने अपने माता-पिता के घर में उनकी डाँटें-झिड़कें सहन की, शादी के बाद तुझ जैसे टेढ़े आदमी से वास्ता पड़ गया, रहती कसर खूसट सास ने पूरी कर दी। जब तक जीवित रही, मुझे चैन से जीने नहीं दिया।" गुरनामो ने दिल की भड़ास निकालते हुए कहा।

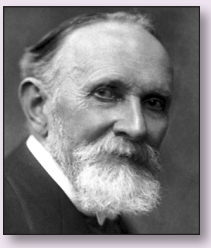
निहाल सिंह ने उसकी ओर कटु दृष्टि से देखा और कहा, "तू तो सारा दिन ख़ुद बेबे के साथ लड़ती-झगड़ती रहती थी। अब उसके मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ती। बात किस विषय पर हो रही है, यह अलग ही दिशा में चल पड़ी।"

गुरनामो इस बात को और बढ़ाना नहीं चाहती थी, इसलिए वह चुप हो गई।

निहाल सिंह भी कुछ देर की ख़ामोशी के बाद धीरे-से अपनी पत्नी को कहने लगा, "देखो, बुद्धिमान लोग कहा करते हैं कि हथेली में रेत रखकर जितना उसे कसोगे, रेत धीरे-धीरे मुट्ठी से बाहर झर जाएगी। बुद्धिमानी इसी में है कि मुट्ठी खुली छोड़ दो। रेत हथेली पर टिकी रहेगी।"

गुरनामो सोचने लगी कि आज के बच्चे भी रेत बन गए हैं, जो माँ-बाप द्वारा मुट्ठियाँ कसते ही हाथों से झरने लगते हैं! ❑

नोबेल पुरस्कार प्राप्त स्विस कवि



कार्ल फ्रेडरिक जॉर्ज स्पिटेलर

कार्ल फ्रेडरिक जॉर्ज स्पिटेलर की कविताएँ

24 अप्रैल, 1845 को स्विट्ज़रलैंड के शहर लीस्टल (बेसलैंड कैंटन) में कार्ल स्पिटेलर का जन्म हुआ। चार वर्ष की उम्र में अपने पिता के साथ, जो कि स्विस में नौकरी करते थे, के साथ चले गए। 1862 में उन्हें साहित्य के प्रति रुचि जागी। अपनी आत्मकथा 'बिजली की तरह' में उन्होंने लिखा, "कविता उनके लिए अपनी अवज्ञा और सच्चे विचारों को व्यक्त करने का आदर्श तरीक़ा है।" चुनौतियों को जानते हुए भी उन्होंने एक कवि के रूप में अपना जीवन-यापन करने का निर्णय लिया। विशाल 'ओलम्पियन स्प्रिंग' (1910 में संशोधित) उनका उत्कृष्ट महाकाव्य माना गया जिसमें देवताओं की शक्ति और चेतना के उदय का विवरण दिया गया है। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'प्रोमेथियस, एण्ड एपिमेथस', 'गुस्ताव', 'लाचेंडे वाहरहाइटन, (लॉफ़िंग गेम्स) तथा 'ओलम्पियन स्प्रिंग' मुख्य हैं। 'ओलम्पियन स्प्रिंग' महाकाव्य में कवि की छंदात्मक योजना ने आलोचकों को प्रभावित किया। इसी कृति पर वर्ष 1919 में उन्हें साहित्य के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया। 29 दिसम्बर, 1924 को ल्युसर्न में उनका देहावसान हुआ।

अनुवाद
बंशीधर तातेड़



ई-मेल : taterdrbd@gmail.com

बहुत छोटी इच्छा

उन दिनों, जब मैं छोटा था
क्या उन्होंने मुझसे पूछा था कि-
मैं क्या चाहता हूँ?

यदि इच्छा हो तो
सबसे पहले मैं क्या चाहूँगा
हक़ीक़त में कभी भी दिया जा सकता है,
ऐसी व्यापकता के विचार के रूप में
मुझे, काफ़ी देर तक झिझकना चाहिए था,
चित्र-किताबें, पेंट-बॉक्स, सैनिक-
इनके बीच में उतार-चढ़ाव आया है
परन्तु बड़ा होने पर योजनाएँ ज़्यादा साहसी थीं,
मैंने मेरा गौरवान्वित करने वाला चुनाव किया था
-नायक के रूप में प्रसिद्धि,
-विजेता के रूप में प्रसिद्धि
या लॉरेल से-
सम्मानित एक कलाकार के रूप में
कुछ डोमेन में प्रवेश के स्वामी,
मेरे चारों ओर जादुई पेड़ खिल रहे हैं
और
ख़ूबसूरत महिलाएँ नज़रें गड़ाए हुए हैं
आजकल, यदि आशा थक गई है
कामना-खेल में जारी रही,
हालाँकि,
मैं बचकानी बात सोचकर शरमा गया,
मूर्खतापूर्ण लालसा अभी भी मौजूद थी,
मैं प्राचीन तरीक़े से सुनने को कहूँगा
एकांत में सोने पर, घण्टियाँ बजती थीं,
आधा सोया हुआ, थोड़ा साथी...
मैं वही सुनने को कहूँगा।

एक और जागृति

सपनों की दुःस्वप्न दुनिया से
मैं एक चीख़ के साथ जाग गया
घण्टियों की झंकार और पक्षियों का गीत
नूतन/नवोदित वनों की गहराई में मैंने सुना;
दोस्ती का सुनहरा दिन तोड़ दिया,
डर और संताप भाग गए
वहाँ आओ, मेरे लिए एक समय होगा
जब कोई दिन मुझे आज़ाद नहीं करेगा,
जब मेरा एक मात्र आराम होगा
सपनों में झूठ बोलना काल्पनिक,
जब अंधेरी रात में
मैं बेहोश हो जाता हूँ
फिर कभी नहीं जगाया जाएगा।

सुबह की घण्टी

ऐसा लग रहा था मानो
सुबह कभी नहीं होगी
मुझे रात के प्रलाप से बचाने के लिए,
मैं विचारों के उन नरकों में घूमता रहा-
जिन्होंने स्कूली शिक्षा प्राप्त की
अन्य समय में मेरे दिमाग़ ने
कठोरता से शासन किया
इसकी प्रत्येक गति पर
बुख़ार अब राजा था;
मेरी आत्मा टटोलती हुई,
काँपती हुई असहाय चीज़,
सपनों की भूलभुलैया में-
न कोई विराम, न कोई आराम,
उग्रता का शिकार, निहत्था और बेदख़ल

सुनना! प्रकाशहीन अंधकार
काली निराशा के माध्यम से,
दूर से एक घण्टी बजती है...मुक्ति! दिन!
युवा जीवन, युवा विश्वास साँस लेता है "मैं"
और नर्म और साफ़
फुसफुसाता है मानव-
उल्लास का प्रातः-स्वप्न। ❑



कला और साहित्य का लालित्यपूर्ण सहचर्य

एक शीर्षस्थ समालोचक के रूप में नामवर सिंह का नाम काफ़ी सुना था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनके अनुज काशीनाथ सिंह के सम्पर्क में तो था ही, प्रभावित भी था। अनेक बार साहित्यिक गोष्ठियों और साहित्यिक रंगमंच कार्यक्रम के दरम्यान नागरी नाटक मंडली हो या दिल्ली स्थित सभागार में, अनेक महान रचनाकारों से जुड़ता गया।

कला और साहित्य का साहचर्य हमेशा की तरह पूर्ण लालित्य को उद्घाटित करता रहा है। आरेखन हो या दृष्टांत चित्र अथवा इलेस्ट्रेशन, साहित्य के किसी गद्य या पद्य का सम्पूरक होता है। यह बात बचपन के आखर पोथी चित्र से देखते आ रहे हैं किन्तु जहाँ तक मेरा नाता, विशेषकर एक कठोर, लचीली एवं त्रिआयामी स्वरूप-मूर्तिकला से सम्बन्ध रहा है और हमें संगीत व साहित्य के ऐसे मनीषियों से जिन्होंने अपने कृतित्व से एक लम्बी लकीरें खींच कर साहित्य व संगीत के क्षेत्र को समृद्ध करते हुए ऐतिहासिक कार्य किए जिनमें बाबा नागार्जुन, जानकी वल्लभ शास्त्री, पं. जसराज, पं. माधव गुड़ी, अनुप जलोटा, पं. शिवकुमार शर्मा आदि समकालीन शामिल है। यूँ तो सोचा ना था... एक लम्बी श्रृंखला तैयार होगी किन्तु बाबा नागार्जुन से 1998 में जब खाजासराय स्थित ज्येष्ठ पुत्र शोभाकांत के आवास पर स्वास्थ्य लाभ ले रहे, प्रथम दर्शन हुए वहीं सम्मुख पाकर मेरा दर्शन ही बदल गया। अद्भुत क्षण था वह... अति विलक्षण...दिव्य! बाबा खाट पर लेटे हुए थे। मेरे आने की सूचना ने उन्हें उठाया। खाट पर बैठे बाबा इस क़द्र प्रतीत हो रहे थे कि कृश्काय काया में धँसा एक



राजेश कुमार मूर्तिकार
ई-मेल : rksudi448@gmail.com

कठोर शिलाखण्ड गोलक शीष और जिसका दिव्य चौड़ी ललाट।

उनके चरण स्पर्श करते ही झुके सिर गतिशील हो मेरी आँखों से साक्षात्कार करने लगी। यह वह क्षण था जब उनकी आँखों से एक दिव्य ज्योति स्वरूप ऊर्जा मेरी आँखों तक पहुँची और सीने में आकर ठहर-सी गई जहाँ सहसा पहुँचे मेरी हथेली ने महसूस किया। फिर सिलसिला शुरू हुआ, जब वो बैठते विभिन्न कोणों से रेखांकित करता, जब वो विश्राम करते जो बनारस के गंगा की माटी में उन्हें गढ़ता रहता। जून का महीना सुबह जाना और शाम को घर वापस लौटना, लगभग सप्ताहभर के इस यात्रा में बाबा यानी बैद्यनाथ मिश्र यात्री के अनेकों रेखाचित्र और एक मूर्तिशिल्प का निर्माण कर संग्रहित करने का यह पहला सुअवसर भी था और प्रेरणाप्रद भी। जब सारे रेखाचित्र व पोट्रेट मूर्ति के साथ काशी लौटा तो उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी के द्वारा प्रायोजित मेरी पहली एकल प्रदर्शनी में ये कलाकृतियाँ ख़ासा चर्चित हुईं और हिन्दी विभाग के विद्वानों से और गहरा नाता होता गया।

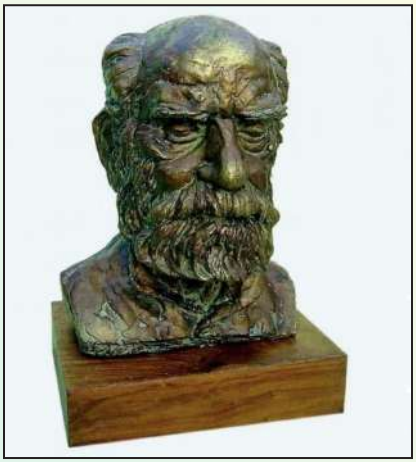
बैचलर ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स पूरी होते ही मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, कला संस्कृति विभाग की ओर से दो वर्षों के लिए मूर्तिकला के क्षेत्र में सांस्कृतिक अध्ययनवृत्ति की घोषणा हुई और मैंने इसी के साथ मास्टर ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स की शिक्षा भी पूरी कर ली। इस बीच मेरी श्रेष्ठ पाषाण कलाकृति को उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी ने पुरस्कृत किया और माननीय राज्यपाल और राज्य संस्कृति मन्त्री के कर कमलों से ललित कला अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ और कला के क्षेत्र में अपने साहित्यिक सरोकार से पहचान बनाना आसान हो गया। साथ ही अपने कुशल कला गुरुओं के कुशल मार्गदर्शन पाकर अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त कर कला के माध्यम से अपनी पहचान राष्ट्रीय पटल पर उजागर करने में सफल रहा।

इस सफलता के पीछे अपनी कलाविधा, मूर्तिकला के माध्यम से साहित्य सरोकार से जुड़े रहना और शीर्षस्थ साहित्यकारों, संगीतकारों, कलाकारों से साक्षात्कार करते हुए सम्मुख दो-तीन बैठकें लेकर उन्हें कोमल मिट्टी में गढ़ना विशेष महत्वपूर्ण रहा। बैचलर ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स के दरम्यान (1999) में ही मेरी मुलाक़ात



केशव मल्लिक

हिन्दी के एक और पुरोधा त्रिलोचन शास्त्री से हुई। वहाँ यूँ तो मैं अकेला नहीं था, लम्बी क़तार थी, हिन्दी साहित्य विशेषकर त्रिलोचन शास्त्री में अभिरुचि रखने वाले लोगों की। शब्दावली के इनसाइक्लोपीडिया के रूप में पाया था उन्हें। विषय चाहे कुछ भी, किसी कालखण्ड का हो, ऐसी व्याख्या करते और ऐसी-ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते मानो उस शब्द का अभी-अभी ईजाद हुआ हो। अपने आवास पर वाचस्पति और उनकी पत्नी की अगाध सेवा और निश्छल श्रद्धा भाव उनके प्रति तो था ही, अन्य छात्रों व शोधार्थियों के साथ त्रिलोचन शास्त्री परिभाषाओं में जिस प्रकार गुम हो जाते उसी प्रकार मैं उनकी घनी दाढ़ी और गड्ढे में धँसी गहरी झाँकती आँखों की नैसर्गिक बनावट में बैठे-बैठे खो जाता। तभी वाचस्पतिजी से उनमें खो जाने का कारण बताया। बड़ी सहजता से वे तैयार तो हो गए और बस गीली मिट्टी के स्पर्श से उनके कोमल व कठोर भावों को अपनी हथेलियों व गदेरियों से नवीन शब्दकोष की भाँति मानो मैंने गढ़ने का प्रयास किया। उनके चेहरे के मोटे मस्से की ख़ूबसूरती ही कुछ ग़ज़ब की थी जिसे सफलतापूर्वक धातुशिल्प में परिणत कर डाला जिसकी सराहना एक प्रदर्शनी में राज्यपाल राम नाइक ने की और इन धातुशिल्पों को लिटरेरी फ़ेस्टिवल, लखनऊ में भी शामिल किया गया। जहाँ इस साहित्यिक धातुशिल्प के लिए सिने अभिनेता रजत कपूर के हाथों 'यूथ अचिवर्स' सम्मान भी प्राप्त हुआ, उन्हीं दिनों किसी अन्य साहित्य अनुरागी से बाबा नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री के समकक्ष पं. जानकी वल्लभ शास्त्री के बारे में उनके मुज़फ़्फ़रपुर स्थित आवास का पता चला। कहा भी जाता है जहाँ चाह वहाँ राह... मिल ही जाता है।



त्रिलोचन शास्त्री

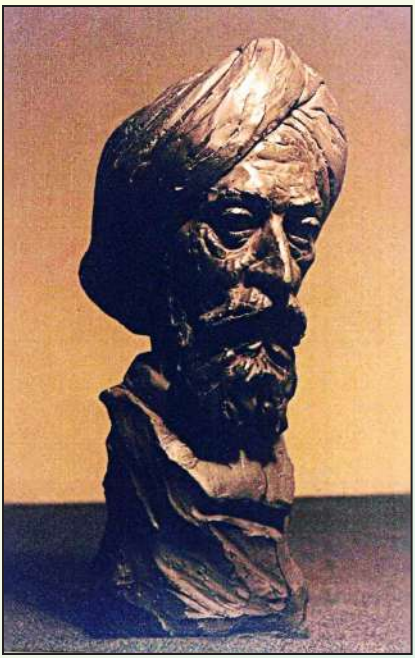
फिर क्या था, सम्पर्क स्थापित होते ही गीली मिट्टी और अन्य सामग्री सहित मुज़फ़्फ़रपुर को रवाना हो गया। मन में अनेक संशय था किन्तु जिस विश्वास के साथ उनके आवास तक पहुँचा, चतुर्भुज स्थान में एक बड़े से दलान पर खूँटे से बँधे अनेक गाय, बैल, वृषभ, बिखरे पुआल आदि। जब आगे बढ़ा तो दर्शन हुए शास्त्रीजी का, लकड़ी के खाट पर बैठे और इर्द-गिर्द श्वान की टोली जिसे शास्त्रीजी बिस्किट खिला रहे थे। उनका पशुप्रेम अद्‌भुत था। कुछ देर इस परिवेश को आत्मसात करता रहा फिर शास्त्रीजी की रचनावली को



नामवर सिंह

पढ़ने का प्रयास शुरू किया। शास्त्रीजी के लम्बे बाल अब झड़ चुके थे। आख़िर एक रचनाकार का जीवन ठहरे हुए पानी की तरह थोड़े ही न हो सकती है! दिन ढल चुका था। छोटी-छोटी बातों के साथ रात भी बीत ही गई। प्रातः पक्षियों की चहचहाहट के साथ आँखें खुलीं और दिन सफलतापूर्वक बीता। मेरे सामने बैठे शास्त्रीजी जिन्हें गिली मिट्टी में गढ़ना शुरू किया और पूरी तरह शिल्पगत कर फिर उसका साँचा तैयार करने में लग गया। आने-जाने वाले को मूर्ति और शास्त्रीजी में भेद करना मुश्किल हो रहा था तब स्वतः प्रतीत हुआ, परीक्षा में सफल हुआ। लौटते वक़्त जानकी वल्लभ शास्त्री ने कुछ रुपये देना चाहा, मानो मैं उन्हें अपनी कला का प्रदर्शन कर पैसे की उम्मीद से आया कोई सिरफिरा कलाकार मालूम हुआ! मैं सहजता से इंकार करते हुए उनको नमन कर सीधे वापस लौटा।

एक शीर्षस्थ समालोचक के रूप में नामवर सिंह का नाम काफ़ी सुना था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनके अनुज काशीनाथ सिंह के सम्पर्क में तो था ही, प्रभावित भी था। अनेक बार साहित्य गोष्ठियों और साहित्यिक रंगमंच कार्यक्रम के दरम्यान नागरी नाटक मंडली हो या दिल्ली स्थित सभागार में अनेक महान रचनाकारों से जुड़ता गया। नामवर सिंह के तीन-दिवसीय व्याख्यान कला भवन की सूचना उनकी शिष्या और हिन्दी विभाग की व्याख्याता रामकली सर्राफ़ से मिली। मैं लक्ष्मण दास अतिथि गृह में जा पहुँचा। मिलकर बताया कि आपको बैठकें देनी हैं। उनकी आँखों में अद्‌भुत चमक थी और व्यवहार में शुद्धता, जिज्ञासा, सहजतापूर्ण उमंग दिखा। जैसे-जैसे मैंने कहा, वैसे-वैसे सीटिंग दी और तैयार हो गए एक और नामवर। वही ललाट, वही आँखें। वहीं गेस्ट हाउस की छत पर साथ फ़ोटो भी खिंचवाई।



प्रख्यात मूर्तिकार बलवीर सिंह कट्ट

ऐसी सहजता एक विराट व्यक्तित्व का जो दिखा शायद किसी ने न देखा हो! वाक़ई नामवर सिंह की आँखों में अद्‌भुत तेज था और गहराई भी। कुर्ते, धोती, चप्पल में उनका व्यक्तित्व तो निखरता ही था। समालोचक के रूप में ख्यातिलब्ध रहे। तीसरे दिन के व्याख्यान में जब उपस्थित हुआ। रामकली सर्राफ़ मंच संचालन करते हुए कह रही थीं, शायद ही कभी हिन्दी के व्याख्यान में इतनी भीड़ देखने को मिलती है, पहली बार कला भवन के सभागार के भीतर और बाहर खचाखच साहित्य प्रेमियों की भीड़ देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा था कि आकर्षण और सम्मोहन नामवर सिंह के



बाबा नागार्जुन



नित्यानन्द तिवारी

व्याख्यान वाणी में था। सचमुच एक विराट व्यक्तित्व की सहजता को एक मूर्तिकार के रूप में क़रीब से जाना जो किसी और ने न देखा हो, न महसूस किया हो।

फिर तो न जाने कितने मनीषियों, संगीतकारों, कलाकारों, कला आलोचकों को मूर्तिमान किया जिनमें पद्मश्री पं. शिव कुमार शर्मा, पद्मश्री अनुप जलोटा, पद्मश्री पं. जसराज, पद्मश्री पं. विद्यानिवास मिश्र, कर्नाटक शैली के पं. माधव गुडी, पद्मश्री उमाकांत गुंदेचा, पद्मश्री राजेश्वराचार्य, कला समीक्षक केशव मल्लिक, के.एन. कक्कड़, आनंद कृष्ण, जयकृष्ण अग्रवाल, चित्रकार एस. प्रणाम सिंह आदि अनेक दिग्गजों के जीवन्त पोट्रेट सामने बिठा कर दो-तीन बैठकों में तैयार करने का अनोखा अनुभव साथ लिए प्रसन्नता होती है। ❑

हिन्दी अनुवाद लेखन में केरल का योगदान

भारत की विविध भाषाओं और विदेशी भाषाओं में रचे जाने वाले साहित्य को पढ़ने और समझने के लिए अनुवाद ही एकमात्र साधन है। अनुवाद के द्वारा विभिन्न भाषा और साहित्य के विकास में बहुत सहायता मिलती है। इसलिए आधुनिक काल में अन्य विषयों के समान अनुवाद का भी महत्व है। हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अच्छे अनुवादक थे। उन्होंने मौलिक रचना के साथ-साथ अनेक अनुवाद कार्य भी किया था।



पी. जे . शिवकुमार
ई-मेल : sivakumarpj@rediffmail.com

अनुवाद का इतिहास बहुत पुराना है। कहा जाता है कि विश्व में सबसे पहला अनुवाद 'बाइबिल' (Old Testament) का हीब्रू भाषा से यूनानी भाषा में हुआ था। 370 ई. पूर्व 72 अनुवादकों ने यह काम किया था। ई. सन् 364 में सेंट जेरोम ने लैटिन भाषा में इसका अनुवाद किया था। हिन्दी में 'बाइबिल' का अनुवाद विलियम केरे ने किया।

(राम गोपाल सिंह, 'अनुवाद विज्ञान : स्वरूप और समस्याएँ', पृष्ठ 1-11)

भारत में प्राचीन काल से ही अनुवाद की प्रक्रिया चलती थी और संस्कृत साहित्य का व्यापक रूप से अनुवाद विभिन्न भाषाओं में होता था। पूरे विश्व में अब अनुवाद का महत्व स्वीकार किया गया है। भारत एक बहु भाषा-भाषी देश है। 'विविधता में एकता' हमारा मूलमन्त्र है। इस एकता को बनाए रखने में अनुवाद की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। भारत की विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत नित्य अनेक रचनाएँ होती रहती हैं लेकिन पाठक अपनी मातृभाषा की रचना का अध्ययन करने के अलावा अन्य भारतीय भाषा की किसी रचना का अध्ययन करने में असमर्थ रहता है। इसके लिए सारी भारतीय भाषाओं का अध्ययन करना भी असम्भव है। इस समस्या का हल तभी हो सकता है जब

यहाँ की हरेक भाषा की कृतियों का अन्य सभी भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हो जाए लेकिन यह भी आसान कार्य नहीं है। अगर इन कृतियों का कम-से-कम हिन्दी में अनुवाद होने पर अधिकांश लोग इसका अध्ययन कर सकते हैं, क्योंकि हिन्दी अब पूरे भारत में बोली और समझी जाने वाली भाषा बन गई है। विशिष्ट भाषा का पद प्राप्त भाषाओं की साहित्य रचनाओं का और हर एक भारतीय भाषा की पुरस्कृत रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद पहले से ही हो रहा है।

भारत के अहिन्दी प्रदेशों में केरल एक ऐसा राज्य है जहाँ के लोगों ने अपनी मातृभाषा मलयालम के ही समान हिन्दी भाषा को भी अपनाया है। स्वतन्त्रता के पहले से ही केरल में मौलिक हिन्दी-लेखन की शुरुआत हुई थी। महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दुस्तानी भक्ति गीतों का संग्रह 1935 में ही 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उनसे भी पहले प्रसिद्ध हास्य-कवि एवं 'ओट्टन तुल्लल' के प्रणेता कुंचन नंपियार के तुल्लल गीतों में हिन्दी शब्दों का प्रयोग हुआ था। टी.के. गोविंदन टेलिचेरी, विमल केरलीय, टी.के. रामन मेनोन, लक्ष्मीकुट्टी देवी, भारती देवी और पी. अम्मिणी देवी आदि प्रारम्भ कालीन केरल के हिन्दी लेखक थे।

प्रारम्भकालीन अनुवाद : मौलिक रूप से हिन्दी में साहित्य रचना करने के समान केरल में हिन्दी अनुवाद भी बड़ी मात्रा में हुआ है और हो रहा है। वर्षों पहले से ही उत्तर भारत की पत्रिकाओं में मलयालम से हिन्दी में अनूदित रचनाओं का प्रकाशन होने लगा था। केरल की पत्रिकाओं में भी हिन्दी कविताओं के मलयालम अनुवाद प्रकाशित होते थे। मलयालम की रचनाओं का हिन्दी में और हिन्दी की रचनाओं का मलयालम में अनुवाद हो रहा है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं की रचनाओं के अनुवाद हो रहे हैं, फिर भी कविता, कहानी, नाटक एवं उपन्यासों के अनुवाद ही अधिक हुए हैं। इन अनुवादों को प्रकाशित करने में केरल से निकलने वाली अनेक पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि की रचना 'नारायणीयम' का और पूंतानं की कृति 'ज्ञानप्पाना' का हिन्दी अनुवाद 'केरल भारती' नामक पत्रिका में नियमित रूप से प्रकाशित हुआ था। केरल के हास्य कवि कुंचन नंपियार और मलयालम भाषा के जनक तुंजत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन की रचनाओं का भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ था। 'अध्यात्मरामायण', 'महाभारत', 'हरिनामकीर्तनम' आदि का भी अनुवाद प्रकाशित हुआ।

1959 में रत्नमई दीक्षित ने वल्लत्तोल की 17 कविताओं का अनुवाद किया जिसे साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली ने भारतीय कविता शृंखला के अंतर्गत प्रकाशित किया। 1965 में ए. सुब्रह्मण्य अय्यर ने 'महाभारत' का अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने महाकवि उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर की 'प्रेम संगीत' कविता का पद्यानुवाद 1966 अगस्त अंक के 'केरल भारती' पत्रिका में प्रकाशित किया। 1966 में केरल के 10 कवियों की कविताओं का हिन्दी अनुवाद

इलाहाबाद के 'माध्यम' नामक पत्रिका के केरल विशेषांक में प्रकाशित हुआ। एषुत्तच्छन कृत 'महाभारतं' का अनुवाद ए. सुब्रह्मण्य अय्यर ने 'महाभारत' नाम से 1965 में किया।

1970 के बाद केरल के हिन्दी पत्रिकाओं और उत्तर भारत की पत्रिकाओं में केरल के हिन्दी कवियों की अनेक अनूदित कविताएँ प्रकाशित होने लगीं। जी. गोपीनाथन ने 'मलयालम की नई कविताएँ' नाम से आठ मलयालम कवियों की पन्द्रह कविताओं का अनुवाद करके 1974 में पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। के. सुकुमार पिल्लै का अनुवाद 'सीता की विचारधारा', पी. कृष्णन का अनुवाद 'समय का गीत कवि अय्यप्प पणिक्कर', टी.एस. दिवाकर का अनुवाद 'मलयालम का मस्तक', कवि वल्लत्तोल, चन्द्रशेखर नायर का अनुवाद 'कुरुक्षेत्र', के.जी. बालकृष्ण पिल्लै का अनुवाद 'मेरा मुख', ए. अरविंदाक्षन का अनुवाद 'प्रियदर्शिनी' आदि प्रसिद्ध हैं। के.सी. सुकुमारन नायर ने बालामणि अम्मा की कविताओं का अनुवाद प्रकाशित किया और जी. गोपीनाथ ने वैलोप्पिल्ली की कुछ अन्य कविताओं का अनुवाद प्रकाशित किया। ए. अरविन्दाक्षन के सम्पादन में केरल हिन्दी साहित्य मंडल ने 'आधुनिक मलयालम कविता' नामक काव्य-संकलन प्रकाशित किया। इसमें 17 कवियों की एक-एक कविता संकलित थी। उसी प्रकार कुंजुण्णि मास्टर की छोटी-छोटी कविताओं के अनुवाद का संकलन भी उनके सम्पादन में प्रकाशित हुआ। 1977 में हरिहरन उण्णित्तान ने महाकवि कुमारना आशान द्वारा रचित 'चिन्ताविष्टयाय सीता' नामक काव्य का हिन्दी अनुवाद 'सीता' नाम से प्रकाशित किया।

कविता : वास्तव में केरल में मलयालम से हिन्दी अनुवाद 1965 में 'ओडक्कुकुषल' को प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्ति से हुआ था।

मलयालम के प्राचीन कुछ काव्यों का हिन्दी अनुवाद 'प्राचीन मलयालम काव्य धारा' नाम से सन् 1973 में प्रकाशित किया गया। कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के एन.ई. विश्वनाथ अय्यर ने इसका सम्पादन किया और अनुवाद सुनीता ने किया। 'नवीन काव्यधारा' नाम से 1978 में मलयालम के नवीन कुछ कवियों की रचनाओं का अनुवाद भी उन्होंने प्रकाशित किया। इसमें रामपुरत्तु वारियर, केरला वर्मा, पी. कुंचिरामन नायर, इटश्शेरि राघवन नायर, इटप्पिल्लि राघवन पिल्लै, अक्कित्तम आदि कवियों की कविताएँ शामिल थीं। इसका सम्पादन एन.ई. विश्वनाथ अय्यर ने किया और अनुवाद सुनीता ने। 'हरिनामकीर्तनम' का अनुवाद 1977 में के.एन. मेनोन ने प्रकाशन किया। पी.आर. भास्करन नायर के द्वारा कुंचन नम्बियार के तुल्लल गीतों का अनुवाद लखनऊ के भुवन वाणी ट्रस्ट ने प्रकाशित किया था। 1979 में महाकवि कुमारन आशान, उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर और वल्लत्तोल की कविताओं के मुख्य अंशों को जोड़कर के.जी. बालकृष्ण पिल्लै, कुन्नुकुषि कृष्ण कुट्टी और सी.जी. राजगोपालन ने

'कवित्रय वाणी' नामक काव्य-संग्रह का अनुवाद किया, जिसे महाकवि उल्लूर मेमोरियल लाइब्रेरी ने प्रकाशित किया।

1980 से मलयालम के प्रसिद्ध कवियों के काव्यों का हिन्दी अनुवाद खण्डशः 'केरल भारती' पत्रिका में प्रकाशित होने लगा। इनमें चन्द्रोत्सव (अनुवादक : इलन्तूर राघवन नायर), नारायणीयं (अज्ञात लेखक), ज्ञानप्पाना (अनुवादक : सी.के. एस. वारियर), कुचेलवृत्तं वंचिप्पाट्टु, (वी.करुणाकर नायर) कृष्णागाथा, (वी. करुणाकर नायर), कर्णभूषणम् (कवियूर शिवराम अय्यर) आदि उल्लेखनीय हैं। 1988 के समय में उल्लूर, वल्लत्तोल, कुमारना आशान आदि की कविताओं एवं खण्डकाव्यों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ।

नाटक : तोप्पिल भासी के दो नाटकों का अनुवाद 'उत्थान' (1952) और 'पूँजी' नाम से लक्ष्मण शास्त्री ने किया। इटश्शेरी गोविंदनकुट्टि नायर कृत 'कूट्टुकृषि' नाटक का अनुवाद 'सहकारी खेती' नाम से के. रवि वर्मा ने किया।

कैनिक्करा पद्मनाभ पिल्लै का प्रसिद्ध नाटक 'वेलुत्तंपि दलवा' का हिन्दी अनुवाद सुधांशु चतुर्वेदी ने किया। 'मण्णुं पेण्णुं' नामक उरूब के नाटक का अनुवाद 'मिट्टी और नारी' नाम से अभय देव और के. कृष्णा मेनन ने हिन्दी में अनुवाद किया। दोनों अनुवाद सफल रहे। सी.एन. श्रीकंठन नायर का नाटक 'काँचन सीता' का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से सुधांशु चतुर्वेदी ने किया। सी. जे. थॉमस का नाटक 'अवन वींडुम वरुन्नु' का हिन्दी अनुवाद 'वह फिर आ रहा है' नाम से पी.जी. वासुदेव ने किया था। उन्होंने नागवल्लि आर.एस. कुरुप की कहानी की हिन्दी अनुवाद 'पेशा क्या है' नाम से जी. शंकरपिल्लै के नाटक का हिन्दी अनुवाद 'शिकारी' नाम से किया। 'गीतागोविंदम' नामक परमेश्वरन पिलै के नाटक का अनुवाद उसी नाम से पी.जी. वासुदेव ने किया। एन. कृष्ण पिलै कृत 'कन्यका' नाटक का अनुवाद उसी नाम से ही गोविंद शेणाई ने किया। रघुवीरशरण व्यथित ने टी.एन. गोपिनाथन नायर कृत 'मृगम्', 'परीक्षा' नाटकों का अनुवाद 'पशु', 'परीक्षा' नाम से किया। मलयालम के प्रसिद्ध बारह एकांकियों का हिन्दी अनुवाद 'मलयालम एकांकी' नाम से सुधांशु चतुर्वेदी ने प्रकाशन किया।

उपन्यास : वी.ए. केशवन नंबूतिरि ने ओ. चंदु मेनोन कृत 'इंदुलेखा' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। के.एम. पणिक्कर कृत 'केरलसिंहम्' का अनुवाद हिन्दी में रत्नमई दीक्षित ने किया। इसका अनुवाद अभयदेव ने भी किया। वैकम मुहम्मद बशीर कृत 'बाल्य कालसखी' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'साहबजाति' नाम से पी.एन. भट्टतिरि ने, 'इन्टुप्पाप्पाक्कोरु आनेन्डार्नु' का अनुवाद 'दादा का हाथी' नाम से के. रविवर्मा, वेट्टूर रामन नायर कृत 'जीविक्कान मरन्न स्त्री' का हिन्दी अनुवाद अभयदेव ने 'जो जीना भूल गई' नाम से, के. दामोदर कृत 'नरकत्तिल् निन्नुम' का अनुवाद लक्ष्मण शास्त्री ने 'पद्मावती' नाम से, एस. के. पोट्टक्काडु कृत 'ओरु देशत्तिन्टे

कथा' का अनुवाद 'कथा एक प्रांतर की' नाम से और 'कराम्पू' का अनुवाद 'लौंग' नाम से प्रो. पी. कृष्णन ने, तकषि शिवशंकर पिल्लै कृत 'तोट्टियुटे मकन', रंटिटंग्गषि और चेम्मीन का हिन्दी अनुवाद भारती विद्यार्थी ने क्रमशः 'चुनौती', 'दो सेर धान' और 'मछुवारे' नाम से किया। उरूब कृत 'सुंदरिकलुं सुन्दरन्मारुम' का अनुवाद 'सुन्दरियाँ और सुन्दर' नाम से सुधांशु चतुर्वेदी ने किया, एम.टी. वासुदेवन नायर कृत 'नालुकेट्टु' का अनुवाद पद्मिनी मेनन ने 'चार दीवारों में' नाम से ('चार हवेली' नाम से भी इसका दूसरा एक अनुवाद कृष्ण ने मेनोन ने किया था), प्रसिद्ध उपन्यास 'रंडामूषम्' का हिन्दी अनुवाद 'दूसरी बारी' नाम से के.एस. मणि ने किया।

कहानी : 1978 में तुम्पमण तंकप्पन के सम्पादकत्व में प्रेमचन्द की चुनी हुई कहानियों का मलयालम में अनुवाद 'प्रेमचन्द कथकल' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ था। अन्य कहानियों के अनुवाद के अंतर्गत एस.के. पोट्टक्काड की श्रेष्ठ कहानियों का अनुवाद पी. कृष्णन ने नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया। 'स्त्री तथा अन्य कहानियाँ' नाम से उनकी कहानियों का प्रकाशन भी पी. कृष्णन ने इलाहाबाद के लोक भारती प्रकाशन से प्रकाशित किया। विश्वनाथ अय्यर ने अभय कुमार की 'आत्म कहानी' नाम से 'टूरिस्ट बस' नामक अपनी ही कहानी को 'केरल ज्योति' में खण्डशः प्रकाशन किया। इसके अलावा पी.जी. वासुदेव, वी.डी. कृष्णन नंपियार, पी. नारायण, वेणु गोपाल कृष्णन, के.जी. प्रभाकरन, जनार्दनन पिल्लै, विल्फ्रेड तोमस, एन. कुमार पिल्लै आदि ने अनेक कहानियों का अनुवाद किया था।

समकालीन अनुवादक : समकालीन युग में केरल का मौलिक हिन्दी लेखन बहुत ही कम हो गया। कुछ फुटकर रचनाओं का प्रकाशन अवश्य हुआ, शोध प्रबन्धों का प्रकाशन ही अधिक हुआ लेकिन इस युग में अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए। इस प्रकार केरल का समकालीन हिन्दी साहित्य अनुवादों का साहित्य है। पुराने लेखकों के अलावा अनेक नए-नए लेखकों ने अनुवाद के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। समकालीन समय में अनेक साहित्यकारों ने हिन्दी में अनेक अनुवाद कार्य किए हैं। इनमें एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, कवियूर शिवराम अय्यर, वी.डी. कृष्णन नंपियार, डी. तंकप्पन नायर, एस. तंकमणि अम्मा, आर. सुरेन्द्रन (आरसू), पी.के. राधामणि, जी. गोपीनाथन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : एन.ई. विश्वनाथ अय्यर निबन्धकार और सफल अनुवादक थे। विश्वनाथ अय्यर ओ.एन. वी. कुरुप द्वारा रचित 'उज्जयिनी' का अनुवाद उसी नाम से किया। उन्होंने आनंद द्वारा रचित 'आल्कूट्टम' का हिन्दी अनुवाद 'भीड़' नाम से, मलयाट्टूर रामकृष्णन कृत 'वेरुकल' का अनुवाद 'जड़ें' नाम से, पारपुरत्तु का उपन्यास 'अरानाषिकानेरम्' का अनुवाद 'आधी घड़ी' नाम से, सी.वी. रामन पिल्लै का मशहूर उपन्यास 'रामराज

बहादूर' का अनुवाद (1993) उसी नाम से, पूनत्तिल कुंजब्दुल्ला कृत 'मरुन्नु' का अनुवाद 'दवा' नाम से किया। सच्चिदानन्द कृत 'मरण सर्टिफ़िकेट' का अनुवाद उसी नाम से 1994 में किया। एम.टी. वासुदेव नायर कृत 'करियिलमूटिय वषित्तारकल' का हिन्दी अनुवाद उन्होंने 'सूखे पत्ते से ढकी पगडंडियाँ' नाम से किया।

कवियूर शिवराम अय्यर : कवियूर शिवराम अय्यर भी सफल अनुवादक थे। उन्होंने मलयालम के सुप्रसिद्ध कवि कुमारन आशान की 'करुणा', उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर कृत 'भक्ति दीपिका' आदि अनेक कविताओं एवं खण्ड काव्यों का हिन्दी में अनुवाद किया। 'करुणा' के अनुवाद का प्रकाशन 1974 में, 'भक्ति दीपीका' 1974 में, 'त्रिवेणी' (इसमें उल्लूर कृत 'कर्णभूषणम्', 'प्रेमसंगीतं' और वल्लत्तोल कृत 'शिष्यनुम मकनुम्') का 1990 में, 'सीतम्मा' (चन्द्रशेखरन नायर कृत उपन्यास) 1990 में प्रकाशित किया। इसके अलावा उन्होंने पुतुश्शेरी रामचन्द्रन, कडम्मनिट्टा रामकृष्णन, पी. कुंजिरामन नायर की कविताओं का भी हिन्दी में अनुवाद किया। हिन्दी से मलयालम में दो अनुवाद प्रकाशित किया- 'दूजा कबीर' और 'लाजवंती'। उन्हें केरल हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार 1991 में, माता कुसुम कुमारी अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार 1991 में और 2006 में केरल हिन्दी विद्यापीठ से पी.जी. वासुदेव पुरस्कार मिले हैं।

डी. तंकप्पन नायर : डी. तंकप्पन नायर मावेलिक्करा बिषप्मूर कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक थे और अनेक वर्षों से केरल हिन्दी प्रचार सभा की पत्रिका 'केरलज्योति' के मुख्य सम्पादक भी हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी, हिन्दी, मलयालम आदि भाषाओं की अनेक रचनाओं के अनुवाद कार्य किए हैं। सुप्रसिद्ध गायक येशुदास की प्रथम मलयालम कविता 'अन्वेषणम' जो स्त्री नामक पत्रिका में प्रकाशित होकर आया था, उसका हिन्दी अनुवाद 'तलाश' नाम से केरल ज्योति पत्रिका में उन्होंने प्रकाशित किया। 'धन्य हो जीवन' नाम से उनकी दूसरी एक कविता का भी अनुवाद उन्होंने किया। उनके के.एल. पाल की कहानियों के हिन्दी अनुवाद का सम्पादन किया और कुछ कहानियों का अनुवाद भी किया। आषिक्कडियिल, कुट्टवुम शिक्षयुम, श्री एम द्वारा रचित 'गुरुसमक्षम्', 'ह्यदया कमलत्तिले रत्नं' आदि अंग्रेज़ी से अनूदित मलयालम रचनाओं का और चिन्ता रत्न, मानस कैलासम्, गायत्री मंत्रम्, नचिकेता, रामनाथ स्मृति, एन्टे भारतं, के.जी. बालकृष्ण पिल्लै से मिलकर एषुत्तच्छन कृत 'हरिनामकीर्तनं' आदि मलयालम से अनूदित हिन्दी रचनाओं का प्रकाशन किया।

आर. सुरेन्द्रन : आरसू कालिकट विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर रहे थे। मौलिक रचनाओं के साथ ही साथ उन्होंने अनेक कृतियों का अनुवाद भी किया। उन्होंने एस.के. पोट्टाक्काड कृत 'नाटन प्रेमं नामक' प्रसिद्ध मलयालम उपन्यास का 'नादान प्रेम' नाम से 2004 में हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। फणीश्वरनाथ रेणु कृत इक्कीस हिन्दी कहानियों का मलयालम में

उन्होंने अनुवाद किया। इन अनुवादों का संकलन 'रेणुविन्टे कथकल' नाम से 1991 में प्रकाशित हुआ है। ('केरल के दिवंगत हिन्दी सेवी' बहुत ही अनिवार्य एवं उपयोगी दस्तावेज़ है जिसका प्रकाशन 2022 में हुआ। इस ग्रन्थ का मुख्य सम्पादन भी उन्होंने किया।) इसके अलावा अनेक गद्य रचनाओं का मलयालम से हिन्दी में और हिन्दी से मलयालम में अनुवाद किया। अन्य अनेक पुरस्कारों के अलावा उनको केरल सरकार से 2022 का विवर्तक रत्नं पुरस्कार मिला।

एस. तंकमणि अम्मा : केरल के हिन्दी साहित्यकारों में, विशेषकर महिला साहित्यकारों में एस. तंकमणि अम्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। सफल वक्ता के रूप में भी वे पूरे भारत में प्रसिद्ध हैं। मौलिक लेखन के समान अनुवाद के क्षेत्र में भी तंकमणि अम्मा ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने अनेक कविताओं के अनुवाद किए हैं जो भारतीय कविताएँ 1985, 1986, 1987 में संकलित हैं। इनमें चेम्मनम चाक्को कृत 'देशीयचरित्रं' का अनुवाद 'राष्ट्रीय चरित' नाम से, 'वेडियुंडा' का अनुवाद 'गोली' नाम से, ओ.एन.वी. कुरुप की कविता 'शारंग पक्षिकल' का अनुवाद 'शारंग पक्षी' नाम से, वैलोप्पिल्ली की कविता 'कृष्ण मृगम्' का अनुवाद 'कृष्ण हिरण' नाम से अनुवादित किया। बालामणि अम्मा की कविता 'अमूल्यं' का अनुवाद 'अनमोल' नाम से, एन.वी. कृष्ण वारियर की कविता 'आनवाल' का अनुवाद 'हाथी की पूँछ' नाम से उन्होंने किया। इसी प्रकार के.पी. उषा की कविता 'जनाला' का अनुवाद 'खिड्की' नाम से, डी. विनयचन्द्रन की कविता 'सती' का अनुवाद उसी नाम से किया।

के.एल. कमल द्वारा हिन्दी में आंबेडकर पर लिखा गया 'कर्मयोगी' उपन्यास का मलयालम में अनुवाद उसी नाम से ही उन्होंने 2004 में प्रकाशन किया। इन्हों ने के.जी. बालाकृष्ण पिल्लै से मिलकर मृदुला गर्ग कृत प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यास 'कठगुलाब' का उसी नाम से मलयालम में अनुवाद किया। उन्होंने आंबेडकर के जीवन पर के.एल. कमल कृत 'कर्मयोगी' उपन्यास का मलयालम अनुवाद 2004 में प्रकाशित किया। के.जी. बालाकृष्ण पिल्लै से मिलकर के.सी. चन्द्रशेखरन पिल्लै कृत कहानी-संग्रह 'आकाशकूट्टिनु' का अनुवाद 'आसमान मेरा सहचर' नाम से 2015 में प्रकाशन किया जिसमें बाइस कहानियाँ हैं।

वी.डी. कृष्णन नंपियार : वी.डी. कृष्णन नंपियार ने पेरुंपटवम् श्रीधरन के 'ओरु संकीर्तन पोले' उपन्यास का अनुवाद 'वक्ष पर ईश्वर का आद्यक्षर' नाम से 2002 में प्रकाशन किया। के. मोहन वर्मा के 'ओहरी' उपन्यास का अनुवाद कृष्णन नाम्बियार तथा वी.के. रवीन्द्रनाथ ने मिलकर 'मृगतृष्णा' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। एम.टी. वासुदेव नायर कृत 'वाराणसी' नामक मलयालम उपन्यास का अनुवाद 'वाराणसी' नाम से अनुवाद नंपियार ने 2003 में किया। भीष्म साहनी कृत 'कड़ियाँ' उपन्यास का 'कण्णिकल' नाम से मलयालम अनुवाद 1977 में,

'वसंती' उपन्यास का उसी नाम से 1980 में, 'उस चिड़िया का नाम 'का 'आ पक्षियुटे पेरु' नाम से 2000 में, कमलेश्वर कृत 'काली आँधी' का 1978 में 'काट्टुं कोलुम' नाम से, 'आगामी अतीत' का मलयालम अनुवाद 'ऋतुभेदंगल' नाम से, सतीश जमानी कृत 'तीसरी दुनिया' का अनुवाद 1980 में 'अधोलोकं' नाम से, इलाचन्द्र जोशी कृत 'जहाज़ का पंछी' का अनुवाद 2004 में 'जालक पक्षी' नाम से, निर्मल वर्मा कृत 'अंतिम अरण्य 'का अनुवाद 2008 में 'अंतिम तावलं' नाम से किया।

पी. माधवन पिल्लै : भीष्म साहनी कृत प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' का मलयालम में उसी नाम से ही पी. माधवन पिल्लै ने अनुवाद 1988 में किया। उन्होंने जैनेन्द्र कुमार कृत 'त्यागपत्र' का मलयालम अनुवाद 1994 में 'राजिकत्तु' नाम से किया।

जी. गोपीनाथन : जी. गोपीनाथन ने शिवराम कारन्त कृत कन्नड़ उपन्यास 'मृत्यु के बाद' का 'मरणत्तिनुशेषं' नाम से 1977 में मलयालम में अनुवाद किया। निर्मल वर्मा की कहानियों का अनुवाद जी. गोपीनाथन ने अपनी पत्नी के.एस. मालती के साथ 2000 में 'निर्मलवर्मयुटे नीन्डकथकल' नाम से प्रकाशित किया। इनमें 'परिन्दे', 'अंधेरे में', 'लव बड्र्स', 'मायादर्पण' आदि का अनुवाद क्रमशः 'परवकल', 'इरुट्टिल', 'प्रणय जोटि' और 'माया क्कण्णाडि' नाम से प्रकाशित हुआ।

पी.के. राधामणि : मौलिक रचना के साथ ही पी.के. राधामणि ने सफल अनुवाद भी किए हैं। उन्होंने के.पी. रामनुण्णी कृत एवं केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'सूफ़ी परंज कथा' का 'कहानी सूफ़ी की ज़बानी' नाम से ही हिन्दी में 2005 में अनुवाद किया। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता एम.टी. वासुदेव नायर के प्रसिद्ध उपन्यास 'असुर वित्तु' का 'शैतान की औलाद' नाम से हिन्दी अनुवाद 2009 में किया। के.पी. रामनुण्णी कृत एवं वायलार अवार्ड प्राप्त मलयालम उपन्यास 'जीवितत्तिन्टे पुस्तकं' का हिन्दी अनुवाद 'ज़िन्दगी की किताब' नाम से 2010 में किया। एम.पी. वीरेन्द्रकुमार कृत मूर्तिदेवी पुरस्कार प्राप्त मलयालम रचना 'हैमवतभूविल्' का हिन्दी अनुवाद 'वादियाँ बुलाती हैं हिमालय की' नाम से 2011 में, 'कथा भारतं' नाम से बाइस भारतीय भाषाओं से मलयालम में अनूदित कहानियों का संकलन 2012 में, 'प्रतिनिधि मलयालम कहानियाँ' नाम से मलयालम से हिन्दी में अनूदित इक्कीस कहानियों का सम्पादन 2012, अकादमी पुरस्कार प्राप्त मैथिली कथा संकलन 'सरोकार' का मलयालम अनुवाद 'बंधंगल' नाम से 2015 में, रवीन्द्र कालिया कृत 'ग़ालिब छुटी शराब' का अनुवाद 'पानोत्सवंगल्कु विटा' नाम से 2019, के.वी. मोहनकुमार कृत 'प्रणयत्तिन्टे मून्नां कण्णु' का हिन्दी अनुवाद 'प्रणय की तीसरी आँख' नाम से 2019 में अमृता प्रीतम की आत्मकथा 'अक्षरों के साए में' का मलयालम अनुवाद 'अक्षरंगलुटे निषलिल' नाम से 2020 में, गुरुनानक वाणी का मलयालम में अनुवाद 2021 में प्रकाशन किया।

ई. के. दिवाकरन पोट्टि : प्रेमचन्द के उपन्यासों के मलयालम में अनुवाद करने का श्रेय ई.के. दिवाकरन पोट्टि को है। उन्होंने प्रेमचन्द कृत 'सेवासदन' का अनुवाद 'सेवासदनं' नाम से, 'निर्मला' का अनुवाद उसी नाम से, 'ग़बन' का अनुवाद 'वंचना' नाम से, 'कर्मभूमि' का अनुवाद उसी नाम से, 'रंगभूमि' का अनुवाद उसी नाम से, 'प्रेमाश्रम' का अनुवाद 'प्रेमाश्रमम्' नाम से और 'गोदान' का अनुवाद 'गोदानं' नाम से मलयालम में किया। राहुल सांकृत्यायन के कहानी संकलन 'वोल्गा से गंगा तक' का अनुवाद 'वोल्गा मुतल गंगा वरे' नाम से प्रकाशित किया।

ए. अरविंदाक्षन : ए. अरविंदाक्षन ने माधविकुट्टि अम्मा कृत आत्मकथात्मक उपन्यास 'बाल्यकाल स्मरणकल' का हिन्दी में 'बचपन की यादें' नाम से 1999 में अनुवाद किया। उन्होंने सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चुनी हुई कविताओं का अनुवाद 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेनयुटे कविताकल' नाम से 1998 में प्रकाशित किया।

के.सी. अजय कुमार : के.सी. अजय कुमार ने मौलिक लेखन के साथ-साथ सफल अनुवाद भी किए हैं। उन्होंने अपनी पत्नी सिंधु के साथ नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों ('अभ्युदय', 'महासमर का दूसरा भाग') आदि का मलयालम में अनुवाद किया और अजयकुमार ने 'महासमर' के तीसरे भाग का अनुवाद 'कर्मम्' नाम से किया। अपनी ही दो मौलिक रचना 'आदिशंकरम्' और कालिदासन' का हिन्दी अनुवाद भी किया। अजयकुमार कृत टैगोर की अंग्रेज़ी जीवनी के रूपांतर का अनुवाद गीता नायर ने किया।

के.एम. मालती : उन्होंने कई मलयालम कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। सारा जोसफ़ की कहानी का अनुवाद 'प्रकाशिनी की संतान' नाम से, माधवि कुट्टी की कहानी 'पक्षियुटे गंधं' का अनुवाद 'पंछी की गन्ध' नाम से, पी. वत्सला कृत कहानी 'विद्याधरन' का अनुवाद उसी नाम से और उनकी 'चक्रम' नामक कहानी का अनुवाद 'चक्र' नाम से प्रकाशित किया।

एम. मुकुंदन की 'प्लास्टिक' नामक कहानी का अनुवाद उसी नाम से, उनके 'देवदारू' का अनुवाद उसी नाम से, वैक्कं मोहम्मद बशीर की कहानी 'विश्वविख्यात माया मूक्कु' का अनुवाद 'विश्वविख्यात नाक' नाम से किया। जी. कमलम्मा ने हिन्दी यात्रा विवरण 'यात्राएँ' का मलयालम अनुवाद 'यात्रकल' नाम से किया।

एन. मोहनन : एन. मोहनन कोचिन विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डीन और एमरिटस थे। उन्होंने सुप्रसिद्ध मलयालम कथाकार सेतु के उपन्यास 'आरामत्ते पेण्कुट्टि' का हिन्दी अनुवाद किया।

वनजा : वनजा भी कोचिन विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्षा रही हैं। वे प्रसिद्ध मौलिक हिन्दी लेखिका होने के समान सफल अनुवादक भी हैं। वनजा ने सेतु के उपन्यास 'पांडवपुरम' का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से किया। गीतांजली श्री कृत एवं बुकर पुरस्कार प्राप्त 'रेत समाधि' नामक उपन्यास का मलयालम अनुवाद भी

उन्होंने किया।

पी.जे. शिवकुमार : पी.जे. शिवकुमार ने मौलिक लेखन के साथ अनेक अनुवाद भी प्रकाशित किए। पी.जे. शिवकुमार ने डी. तंकप्पन नायर से मिलकर कुछ रचनाओं का अनुवाद किया। इनमें से सीताराम गुप्ता की विख्यात कृति 'मन द्वारा उपचार' का मलयालम अनुवाद 'मनस्सिलूटे रोगशांति' नाम से एडोन पब्लिकेशन, तिरुवनंतपुरम ने प्रकाशन किया। उसके बाद शिवकुमार ने स्वतन्त्र रूप से अनेक रचनाओं का अनुवाद किया। एस. महादेवन तंपी कृत उपन्यास 'आज़ादी' का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से, ए.एम. वासुदेवन पिल्लै कृत 'ग्राउंड ज़ीरो' नामक मलयालम उपन्यास का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से, गिरिजा देवी द्वारा रचित यात्रा विवरण 'कैलास यात्रयुम् पुनर्जनमवुम्' का हिन्दी अनुवाद 'कैलास यात्रा और पुनर्जन्म' नाम से किया। इसके अलावा महादेवन तंपी की 'शरणार्थियाँ', 'अपरचित' आदि कहानियों का हिन्दी अनुवाद, सूरज पाल चौहान कृत हिन्दी कहानी 'बदबू' का मलयालम अनुवाद 'दुर्गंधं' नाम से, राजेश कुमार बौद्ध कृत 'भय' नामक कहानी का मलयालम अनुवाद 'भयं' नाम से और कुछ मलयालम कविताओं का भी हिन्दी अनुवाद किया।

प्रभाकर हब्बार इल्लत्त : प्रभाकर भी सफल अनुवादक हैं। उन्होंने मलयालम लेखिका के.पी. सुधीरा कृत 'गंगा उपन्यास' का उसी नाम से हिन्दी अनुवाद किया। उन्होंने अनेक कहानियों का कॉफ़ी तादाद में अनुवाद किया है। पेरुंपटवं श्रीधरन के उपन्यास नारायणं का हिन्दी अनुवाद 'नारायण गुरु की यात्रा' नाम से 2006 में प्रकाशित किया और हेरमन हेय कृत अंग्रेज़ी उपन्यास का हिन्दी अनुवाद सिद्धार्थ नाम से 2012 में प्रकाशन किया।

पी. लता : लता मौलिक रचना के साथ ही साथ अनुवाद में भी सफल हुई हैं। उन्होंने प्रसिद्ध गीतकार श्रीकुमारन तंपी की चुनी हुई कविताओं का हिन्दी अनुवाद 'श्रीकुमारन तंपी की कविताएँ' नाम से 2014 में, ओ.एन.वी. कुरुप की कविताओं का हिन्दी अनुवाद 'ओ.एन.वी. कुरुप की प्रतिनिधि कविताएँ' नाम से और एस. रमेश नायर की कविताओं का हिन्दी अनुवाद 'गुरु पूर्णिमा' नाम से प्रकाशित किया। माधवि कुट्टी कृत 'नुणकल कहानी' का अनुवाद 'झूठ' नाम से, 'चेम्मरियाटु' कहानी का अनुवाद 'भेड़' नाम से प्रकाशित किया। उरुब की 'रिसर्वुचेय्यात्त बर्थ' कहानी का अनुवाद 'बर्थ जो रिज़र्व नहीं किया गया' नाम से हिन्दी अनुवाद किया।

ओ. वासवन : मौलिक रचना के समान अनुवाद कार्य भी किए हैं। आर.हरि कृत रचना का हिन्दी अनुवाद 'वादे मातरम्' की 'आत्मकथा' नाम से और के.के. मुहम्मद की रचना का अनुवाद 'मैं हूँ भारतीय' नाम से किया। के.पी. चन्द्रन ने 'मलयाट्टुर' नामकृष्णन कृत 'यंत्रं' नामक मलयालम उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। असग़र वजाहत की कहानियों का मलयालम में अनुवाद 'न्जान हिन्दुवाणु' नाम से किया। शरणकुमार

लिंबाले कृत उपन्यास का मलयालम में अनुवाद 'अवर्णन' नाम से प्रकाशित किया।

प्रमोद कोवप्रत ने अनेक मलयालम कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। 'काग़ज़ की नाव', 'बुलबुले' (एम. टी. वासुदेव नायर), 'अज्ञात रहस्य', 'स्वतन्त्रता' (एम.आर. मोहन वर्मा), 'किराया' (एस.भासुरचन्द्र) 'सिर्फ़ एहसास' (यू.के. कुमारन) 'परतन्त्रता' (कमला दास) 'सांत्वना' (पी.एल. विजयन), 'आख़िरी चूड़ियाँ' (प्रिया ए. एस.) 'आख़िरी स्वतन्त्रता सेनानी' (चेम्मनं चाक्को) आदि। उन्होंने टी.एम. एब्रहाम कृत नाटक 'कण्णाडि' का 'आइना' नाम से हिन्दी अनुवाद किया।

शीना ईप्पन : पी.एस. श्रीधरन पिल्लै द्वारा मलयालम में रचित काव्य-संकलन का अनुवाद 'हे! मिज़ोरम' नाम से शीना ईप्पन ने 2021 में प्रकाशन किया। इसमें उनकी पच्चीस कविताएँ संकलित हैं जो मिज़ोरम के प्राकृतिक सौन्दर्य और भारतीय संस्कृति की गरिमा को व्यक्त करती हैं। उन्होंने अब्रहाम मैथ्यू द्वारा रचित बाल कहानियों का हिन्दी अनुवाद 'काला गुड़हल' नाम से 2020 में किया। चुने हुए दस कहानीकारों (हिन्दी की अल्पना मिश्रा, सुषमा मुनीन्द्र, कुसुम अंसल और मराठी लेखक सानिया, लक्ष्मण गय्कवाड, तमिल भाषा के लेखक एन. पार्थसारथी) की कहानियों को 2016 में मलयालम संकलन में 'एन्नोडोप्पम' नाम से किया।

एन.एम. सण्णि ने अधिकतर उदय प्रकाश की रचनाओं का मलयालम में अनुवाद किया। उन्होंने उदय प्रकाश कृत 'पीली छतरीवाली लड़की' नामक लम्बी कहानी का मलयालम में अनुवाद 2011 में 'मंजा कुटा चूड़िय पेण्कुट्टि' नाम से किया। 'मोहन दास' नामक लम्बी कहानी का मलयालम में 2009 में अनुवाद उसी नाम से, 'दिल्ली की दीवारें' का अनुवाद 'दिल्लीयिले चुमरुकल' नाम से 2014 में मलयालम में अनुवाद प्रकाशित किया। अजिता मेनोन ने 2017 में 'हिन्दी पे. कथकल' नाम से दस हिन्दी कहानियों का मलयालम में अनुवाद किया जिसमें 'तांकलुटे चेरिया पेण्कुट्टि', 'चुवन्न् मालिका', 'उटोप्या', 'जीवितवुं रोज़ाप्पूवुम्', 'आदवुम् हौव्वयुम्', 'स्वन्तम् तिरिच्चुवरावु', 'डाफोडिल करियुन्नु', 'इताणु सत्यं', 'मेघावृतम्', 'प्लाट नं-44' आदि कहानियाँ हैं।

वी.वी. विश्वम् ने अरक्कल हस्सनकुट्टि कृत 'वैज्ञानिक भ्रमण साहित्य' का हिन्दी अनुवाद 'हम भी दुनिया घूमें' नाम से 'संग्रथन' पत्रिका में धारावाहिक रूप में किया। उषा बी. नायर ने एस. पद्मकुमारी की कहानी का अनुवाद 'भगवान का अपना' नाम से किया। एम.एस. विनयचन्द्रन ने माधविकुट्टी की मलयालम कविता का हिन्दी अनुवाद 'तम्बू' नाम से और कवि ए अय्यप्पन की कविता का हिन्दी अनुवाद 'चियर्स' नाम से किया। सी.एस. श्रीकुमारी अम्मा ने अपने पति एवं मशहूर कवि देशमंगलम रामकृष्णन कृत काव्य-संकलन के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन किया। के. जनार्दन नायर ने श्रीकुमारन तंपी की कविता का अनुवाद 'मौलसिरी की महक'

नाम से किया। आर. गिरिजा कुमारी ने मणि के. चेंताप्पूर कृत 'कोच्चुण्णि' नामक बाल उपन्यास का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से किया। संतोष प्रियन कृत 'श्रावण' नामक बाल उपन्यास का भी उन्होंने उसी नाम से हिन्दी अनुवाद किया है। पी.जी. कम्मत ने फणीश्वरनाथ रेणु कृत आँचलिक उपन्यास का मलयालम में उसी नाम से 1980 में ही अनुवाद किया। एस. सुरेन्द्रन नायर ने मधुसूदन नायर की 'गंगा' नामक कविता का अनुवाद उसी नाम से 2005 में प्रकाशन किया। पी.वी. प्यारी ने छह विख्यात मलयालम कहानियों का अनुवाद 'मलयालम कहानियाँ' नाम से 1996 में प्रकाशित किया। वी.पी.वी. नायर कृत आंध्र परिवेश की मलयालम कहानियों के दो संग्रहों का हिन्दी अनुवाद एन.पी. कुट्टन पिल्लै ने 'धूपदान' और 'अमृतवर्ष' शीर्षकों से 1997 में किया।

फ़ातिमा जीम : कालिकट विश्वविद्यालय की फ़ातिमा जीम ने विभूतिनारायण राय कृत हिन्दी उपन्यास 'शहर में कर्फ़्यू' का मलयालम अनुवाद 'पट्टणत्तिल कर्फ़्यू' नाम से प्रकाशन किया। चित्रा मुद्गल कृत प्रसिद्ध उपन्यास 'गिलिगडु' का मलयालम अनुवाद फ़ातिमा और सुधा बालकृष्णन ने मिलकर 'सान्ध्य नोम्बरंगल्' नाम से किया। मोनिका देवी कृत उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिम्रन' का मलयालम अनुवाद फ़ातिमा और सनोज पी.आर. ने मिलकर 'सत्यान्वेषण वषियिल सिम्रन' नाम से प्रकाशन किया। ए.के. सुधर्मा ने अलका सरावगी के दो हिन्दी उपन्यासों का मलयालम में अनुवाद प्रकाशित किया, 'कली कथा वया बाइपास' का अनुवाद 'बाइपासु वषि कल्कत्तयिलेक्कु' नाम से और 'एक ब्रेक के बाद' का अनुवाद 'इटवेलक्कुशेषं' नाम से प्रकाशन किया।

रंजीत रविशैलम ने सुप्रसिद्ध गीतकार श्रीकुमारन तंपी कृत 'एन्टे कुट्टनाड' नामक उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में 'उम्मीद' नाम से प्रकाशित किया। इस अनुवाद के लिए उन्हें 2021 का कवियूर शिवराम अय्यर मेमोरियल अनुवाद पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्होंने तंकप्पन नायर से मिलकर मंजु वेल्लायणि कृत यात्रा विवरण 'मानसकैलासम्' का अनुवाद 'मानस कैलास' नाम से किया, जिसका प्रकाशन धारावाहिक रूप में 'केरल ज्योति' पत्रिका में हो रहा है।

सुमा एस. ने अंबिकासुतन मांगाडु द्वारा रचित 'प्राणवायु' नामक कहानी संकलन का हिन्दी अनुवाद उसी नाम से प्रकाशित किया। इसमें सोलह कहानियाँ संकलित हैं। सी.जे. प्रसन्नकुमारी ने सी.वी. रामन पिल्लै कृत 'मार्तांड वर्मा' का अनुवाद, पी. लता ने श्रीकुमारन तंपी की कविताओं का अनुवाद, सुधर्मा ने 'कलिकथा वया बाइपास' उपन्यास का अनुवाद, आनंदवल्ली ने 'बाष्पांजली' नामक अपने ही काव्य का अनुवाद, पयट्टुविला सोमन ने मलयालम से 'सरोजा स्मृति' (काव्य) और 'मीठे अंगूर' (बाल कहानी) नाम से हिन्दी अनुवाद किया। टी. शान्ताकुमारी ने डी. तंकप्पन नायर मिलकर 'पहला सूरज' नामक उपन्यास का मलयालम में अनुवाद किया।

शान्ताकुमारी ने शरत द्वारा रचित मलयालम कविता का हिन्दी अनुवाद 'बिस्मिल्ला ख़ाँ जब मेरे घर में अतिथि होकर आया' नाम से 1999 में किया। उन्होंने के.एल. पांल कृत तीन कहानियों का हिन्दी अनुवाद 'चीटियाँ यात्रा नहीं करतीं', 'फ़सल' और 'उत्तराधुनिक' नाम से किया। के.एल. पांल की कहानियों के हिन्दी अनुवाद में भी उनका योगदान हुआ है।

इनके अन्य अनुवादकों में डी. तंकप्पन नायर, टी. रत्नकुमारी अम्मा, जी. कमलम्मा, आरसू, महेश आदि प्रमुख हैं। के.जी. बालकृष्ण पिल्लै और टी. शान्तकुमारी ने मिलकर सर्वशिक्षा अभियान के लिए 'गलीलियो द लिटिल सैंटिस्ट' नामक पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद हुआ। के.जी. बालकृष्ण पिल्लै ने ख़ुद मलयालम से अनेक कविताओं का हिन्दी अनुवाद किया। ओ.एन.वी. कुरुप की क़रीब साठ कविताओं का, एन.वी. कृष्ण वारियर, अय्यप्प पणिक्कर, एम. पी. अप्पन, सुगत कुमारी आदि की कविताओं का अनुवाद, तकषि एवं श्रीवराहं बालकृष्णन की कुछ कहानियों का भी अनुवाद उन्होंने किया था। नेल्सन मौलिक नाटककार और अनुवादक हैं। उनको 2019 का कवियूर शिवराम अय्यर मेमोरियल अनुवाद पुरस्कार मिला था।

समकालीन युग में नाटकों के अनुवाद कम ही प्रकाशित हुए।

मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' का अनुवाद पी.एन. दामोदरन पिल्लै ने 'आषाढत्तिले ओरु दिवसं' नाम से 1984 में किया। के.एस. मालती ने नंदकिशोर आचार्य कृत नाटक 'हस्तिनापुर', 'देहांतर' नाटकों का मलयालम में अनुवाद यथाक्रम 'हस्तिनापुरं', 'देहांतरं' नाम से किया। ए. अरविंदाक्षण ने शंकर शेष कृत 'कोमल गाधार' नाटक का मलयालम अनुवाद 'गाँधार स्मृतिकल' नाम से 1979 में प्रकाशित किया। वी.डी. कृष्णन नंपियार ने भी अनेक नाटकों का अनुवाद किया। जगदीशचन्द्र माथुर के 'पहला राजा' नाटक का और मोहन राकेश कृत 'आधे अधूरे' का मलयालम अनुवाद किया। एम.एस. विश्वंभरन ने कावालं नारायण पणिक्कर के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद 'अग्निवर्ण महाराज के पैर', 'अरणि' नामों से किया। उन्होंने रामचन्द्रन मोकेरी कृत 'स्वतन्त्र भारतत्तिन्टे अर्द्धरात्री' नामक मलयालम नाटक का अनुवाद 'आज़ादी की आधी रात' नाम से 2005 में और जी शंकर पिल्लै कृत 'एरुंपुकल' का अनुवाद 'चीटियाँ' नाम से 1993 में प्रकाशन किया। इसके अलावा रवीन्द्रन पिल्लै, रमा उण्णित्तान, राजपुष्पम पीटर, एस. सुकुमार नायर, वामदेवन, प्रसूना वी. नायर एस.आर. राजेश्वरी, सुरेन्द्रन नायर, ओमाना आदि ने भी अनुवाद कार्य किया है।

कुछ संस्कृत और अंग्रेज़ी कविताओं का भी हिन्दी अनुवाद हुआ। इनके अलावा विभिन्न पत्रिकाओं में अनेक रचनाओं के हिन्दी एवं मलयालम में अनुवाद प्रकाशित हुए। मौलिक हिन्दी-लेखन के समान केरल में हिन्दी अनुवाद लेखन भी समृद्ध है। नई पीढ़ी के अनेक लेखक इस दिशा में सक्रिय हैं। ❑

प्रकाशन विभाग

परीक्षा तैयारी

के लिए

हमारा संग्रह



व अन्य कई...

रोज़गार संबंधी जानकारी और महत्वपूर्ण समसामयिक विषयों पर गहन विश्लेषण के लिए हर सप्ताह पढ़ें रोज़गार समाचार

सब्सक्राइब करें : www.employmentnews.gov.in

खरीदने के लिए : www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें:

पुस्तकों के लिए : businesswng@gmail.com 01124365609

पत्रिकाओं के लिए: pdjucir@gmail.com 01124367453

सूचना भवन, सीजीओ काम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली - 110003

वर्ष 2023 : पुनर्कथन

फ़िल्म पुरस्कार एवं आयोजन

54वें भारतीय अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव (आईएफ़एफ़आई), गोवा

- महोत्सव का आयोजन 20 से 28 नवम्बर, 2023 के बीच गोवा में सम्पन्न हुआ।
- महोत्सव का आयोजन भारतीय राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम लिमिटेड (एनएफ़डीसी), सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारतीय फ़िल्म उद्योग के माध्यम से एंटरटेनमेंट सोसाइटी ऑफ़ गोवा (ईएसजी) तथा गोवा राज्य सरकार के सहयोग से सम्पन्न हुआ।
- महोत्सव के ओपनिंग फ़िल्म के रूप में स्टुअर्ट गैट की ब्रिटिश फ़िल्म 'कैचिंग डस्ट', मिड-फ़ेस्ट फ़िल्म में नूरी बिल्गे सीलन की तुर्की फ़िल्म 'अबाउट ड्राई ग्रासेज़' का प्रदर्शन किया गया।



54वें भारतीय अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव (आईएफ़एफ़आई), गोवा के उद्घाटन सत्र में माननीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री अनुराग सिंह ठाकुर, गोवा के मुख्यमन्त्री प्रमोद सावंत एवं अन्य अतिथिगण



माइकल डगलस को 'सत्यजीत रे लाइफ़टाइम अचीवमेंट अवार्ड' प्रदान करते गोवा के मुख्यमन्त्री प्रमोद सावंत

- अमरीकन निर्देशक रॉबर्ट कॉलोडिनी की अंग्रेज़ी फ़िल्म 'द फ़ेदरवेट' महोत्सव की समापन फ़िल्म रही।
- अब्बास अमिनी की फ़ारसी फ़िल्म 'एंडलेस बॉर्डर्स' को सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का 'गोल्डन पिकॉक' अवार्ड प्राप्त हुआ और स्टीफ़न कोमांडेरेव ने बल्गेरियाई फ़िल्म 'ब्लागाज़ लेशंस' लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का 'सिल्वर पीकॉक' पुरस्कार जीता।
- दीपक कुमार मिश्रा द्वारा निर्देशित और चन्दन कुमार द्वारा लिखा गया 'पंचायत सीज़न-2' को पहला सर्वश्रेष्ठ वेब सीरीज़ (ओटीटी) पुरस्कार प्रदान किया गया।
- समारोह में हॉलीवुड अभिनेता-निर्माता माइकल डगलस को सत्यजीत रे लाइफ़टाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया।

95वाँ अकैडमी (ऑस्कर्स) पुरस्कार, 2023

- फ़िल्म 'एवरीथिंग एव्रीवेयर ऑल ऐट वन्स' को सर्वेश्रेष्ठ फ़िल्म का पुरस्कार दिया गया। अस्तित्ववाद, शून्यवाद, अतियथार्थवाद और बेतुकापन जैसे दार्शनिक विषयों को पर्दे पर दर्शाती ये फ़िल्म एक मध्यम उम्र की चीनी आप्रवासी किरदार के इर्द-गिर्द घूमती है।

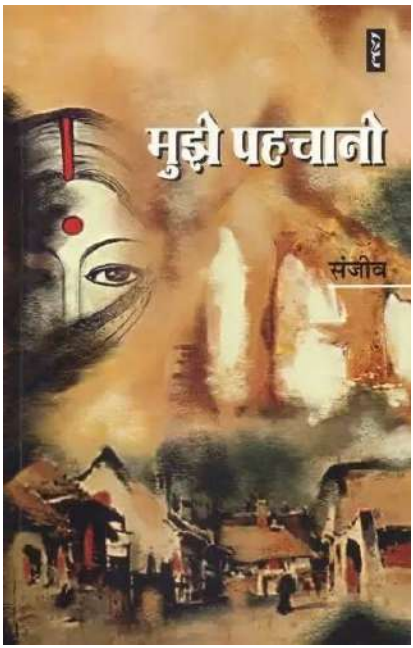
- भारतीय फ़िल्म 'आरआरआर' के तेलुगु गाने 'नाटु-नाटु' को बेस्ट ओरिजिनल साँग के पुरस्कार से नवाज़ा गया। गीतकार चन्द्र बोस द्वारा लिखित और प्रसिद्ध अभिनेता जूनियर एनटीआर और रामचरण पर फ़िल्माए गए इस गाने को काल भैरव और राहुल सिप्लिगुंज ने अपनी आवाज़ दी है।

51वाँ अंतरराष्ट्रीय एमी पुरस्कार, 2023

- 51वें एमी अवार्ड समारोह का आयोजन नवम्बर 2023 में अमरीकी शहर न्यूयार्क में सम्पन्न हुआ।
- टेलीविज़न जगत के ख्याति प्राप्त अंतरराष्ट्रीय एमी पुरस्कार में भारतीय अभिनेता वीर दास को इनके कॉमेडी सीरीज 'वीर दास : लैंडिंग' के लिए बेस्ट कॉमेडी कैटेगरी और भारतीय निर्माता-निर्देशक एकता कपूर को डायरेक्टोरेट अवार्ड से सम्मानित किया गया।

69वाँ राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार, 2023

- 69वें राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार में सर्वश्रेष्ठ फ़ीचर फ़िल्म का पुरस्कार अभिनेता-निर्देशक आर. माधवन की हिन्दी फ़िल्म 'रॉकेट्री : द नांबी इफ़ेक्ट' को दिया गया।
- सर्वश्रेष्ठ मनोरंजक फ़िल्म का पुरस्कार एस. एस. राजमौली द्वारा निर्देशित तेलुगू फ़िल्म 'आरआरआर' को दिया गया और राष्ट्रीय एकता पर सर्वश्रेष्ठ फ़ीचर फ़िल्म के लिए नरगिस दत्त पुरस्कार फ़िल्म 'द कश्मीर फ़ाइल्स' को प्रदान किया गया।
- तेलुगू अभिनेता अल्लू अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता तथा अभिनेत्री कृति सेनॉन को हिन्दी फ़िल्म 'मिमी' एवं आलिया भट्ट को फ़िल्म 'गंगुबाई काठियावाड़ी' के लिए संयुक्त रूप से सर्वेश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया।



साहित्यिक पुरस्कार एवं आयोजन

- साहित्य अकादमी मुख्य पुरस्कार, 2023
- 24 अलग-अलग भाषाओं में दिए जाने वाले प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी के

मुख्य पुरस्कार के विजेताओं में इस वर्ष नौ कविता-संग्रह, छह उपन्यास, पाँच कहानी-संग्रह, तीन निबन्ध और एक आलोचना की पुस्तक शामिल है।

- साहित्यकार संजीव को उनके हिन्दी उपन्यास 'मुझे पहचानो' के लिए सर्वेश्रेष्ठ हिन्दी उपन्यास का पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस पुस्तक में लेखक ने अमानवीय धार्मिक मान्यताओं और आडम्बरों को खण्डित करने का प्रयास किया है।
- नीलम शरण गौर को उनके उपन्यास 'रेक्युम इन रागा जानकी' के लिए अंग्रेज़ी श्रेणी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के लिए सम्मानित किया गया।
- मलयालम लेखक इ. वी. रामकृष्णन को आलोचक श्रेणी का पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- अन्य प्रमुख भाषाओं और श्रेणियों में कविता के लिए गुजराती में संदीप जोशी, मैथिली में बासुकीनाथ झा को तथा उपन्यास श्रेणी में मराठी में कुसुम खत्री राणा, पंजाबी में स्वर्णजीत सवी को ये पुरस्कार प्राप्त हुए।

साहित्य का नोबेल पुरस्कार, 2023

- नॉर्वे के लेखक और नाटककार जॉन फ़ॉसे को वर्ष 2023 के साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- जॉन फ़ॉसे को उनकी अनूठी लेखन शैली जिसे 'फ़ॉसे मिनिमलिज़्म' कहा जाता है, के लिए जाना जाता है।

संकलन एवं प्रस्तुति : ***रवि रौशन चंचल***

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्र : नई दिल्ली : बुक गैलरी (पुस्तक दीर्घा), सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ :** हॉल नं.1, दूसरी मन्जिल, केन्द्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता :** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना :** बिहार : रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई :** 701 बी-विंग, सातवीं मन्जिल, केन्द्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरु :** एफ़ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080- 2 5 5 37244, **अहमदाबाद :** 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पम्प के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद :** कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, का वादिगुडा-500080, **चेन्नई :** राजाजी भवन, एनी बेसेन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनन्तपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650

‘आजकल’ अप्रैल 1962 अंक से

सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’

इस आलेख के लेखक ई. पी. चैलिशेव (27 अक्तूबर, 1921-13 जुलाई, 2020) एक रूसी शिक्षाविद् और सार्वजनिक हस्ती रहे थे। अपने सम्वाद में वे बड़ी तेज़ी से हिन्दी-रूसी-अंग्रेज़ी भाषाओं में बारी-बारी से बोलते थे। वे स्वामी विवेकानन्द के प्रशंसक थे। 2002 में उन्हें पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2004 में उन्हें पहले रूसी नागरिक के तौर पर साहित्य अकादमी फ़ेलोशिप दी गई। वे इंडियन फ़िलोसॉफ़िकल सोसायटी और एशियाटिक सोसायटी के सदस्य थे। उनकी रचनाओं में आधुनिक हिन्दी काव्य मॉस्को, 1965; सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, सुमित्रानन्दन पन्त; भारतीय साहित्य कल तथा आज, (मॉस्को, 1988) चुनिन्दा कृतियाँ मॉस्को, 2002 शामिल हैं।



ई. पी. चैलिशेव

रूढ़िवादी विचारधारा के आलोचकों ने प्रारम्भ में निराला के काव्य की उपेक्षा की थी। यद्यपि नवीन विचारधारा के इस कवि की लम्बे संघर्ष के बाद विजय हुई, परन्तु यह विजय गली-कूचों और सार्वजनिक सभाओं में हुई, जहाँ उनकी नवीन जीवनदायिनी नव काव्यधारा को व्यापक समर्थन मिला।

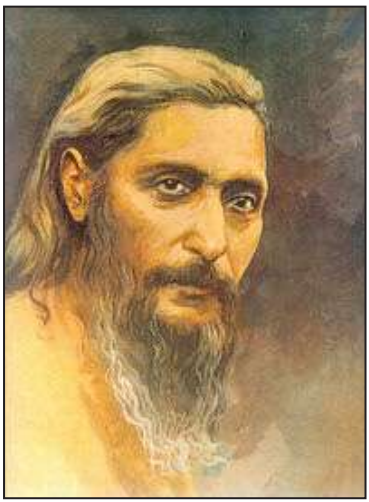
‘बहने दो
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है,
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है?
गरज-गरज यह क्या कहती है, कहने दो-
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो... ’

ये पंक्तियाँ भारत के सुप्रसिद्ध आधुनिक कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की हैं। यह कविता 1921 से पूर्व उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रभातकाल में लिखी थी, जब उन्होंने अपने जीवन के उद्देश्य और समस्याओं का निर्णय कर लिया था और अपनी विप्लवी, अदम्य और अत्याचार के सामने भी कभी न झुकने वाली आत्मा को खोलकर रख दिया था।

निराला का जीवन कठिनाइयों का जीवन था, जिसमें उन्हें कठिन परीक्षा, बाधाओं, पीड़ा, कष्ट, संघर्षमय जीवन की जय-पराजय इत्यादि सबका सामना करना

पड़ा, जिनका उनकी मातृभूमि और उनके देशवासियों के भाग्य से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

निराला का जन्म 1897 में बंगाल के एक छोटे-से गाँव में हुआ, जहाँ भारत की सुन्दर प्रकृति की गोद में उनका बाल्यकाल और किशोरावस्था गुज़री। यहाँ भारत का यह भावी कवि देर तक लोकगीतों और लोकगाथाओं को सुनने में मग्न रहता अथवा अपना बहुत-सा समय 'रामायण' और 'महाभारत' के पाठ के व्यतीत करता। इस समय वह उन प्राचीन भारतीय वीरों की जीवनियों पर विचारणा करते, जिन्होंने भयंकर-से-भयंकर बाधाओं और दानवीय शक्तियों पर विजय प्राप्त की थी।



सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

इस सबसे उनकी सौन्दर्य और कला की भावनाओं और कवित्व प्रतिभा के प्रबोधन में सहायता मिली।

अपने समय के रीति-रिवाजों के अनुसार बाल्यकाल में ही निराला का विवाह हो गया था परन्तु, उनका वैवाहिक जीवन का सुख स्वल्प काल तक ही रहा। प्रथम महायुद्ध के काल में संक्रामक रोग के प्रकोप से उन्हें अपनी पत्नी और लगभग सब निकट सम्बन्धियों से वंचित होना पड़ा। अवशिष्ट जीवित बच्चों तथा भतीजों के लालन-पालन और पोषण की चिन्ताओं का भार अब इस बीस वर्षीय युवा के कँधों पर जा पड़ा। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन को समर्पित करने का संकल्प कर, नौकरी को भी ठुकरा दिया जो उन्हें पिता की मृत्यु के बाद मिली थी। अब उन्हें नून-तेल-लकड़ी की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर कमाई के साधन ढूँढने की चिन्ता और नाना प्रकार की विफलताओं का सामना करना पड़ा। निराला ने यौवन के प्रारम्भ से ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुकरण में कविताएँ और नाटक लिखने शुरू कर दिए थे, परन्तु तत्कालीन रूढ़िवादी विचारधारा के आलोचकों और प्रकाशकों ने उनकी उपेक्षा शुरू कर दी क्योंकि, ग्रंथन, रीति और विचारधारा की दृष्टि से उनका काव्य तत्कालीन हिन्दी साहित्य की कविता-रूढ़ियों से और प्राचीन मध्यकाल की शृंगारमय कविता और छंद रचना ने भिन्न था।

निराला की प्रथम परिपक्व और परिमार्जित काव्य-कृतियाँ यद्यपि 1916 में ही तैयार हो चुकी थीं तथापि अनेक वर्ष बाद उन्हें पहले-पहल सामयिक पत्रिकाओं के पन्नों में स्थान प्राप्त हो सका और उसके बहुत समय बाद पृथक संग्रह के रूप में प्रकाशित हो सकीं।

1920 से कवि के जीवन में एकाकी-संघर्ष का अंत हुआ। अब निराला हिन्दी के अग्रिम लेखकों, जैसे– प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानन्दन पन्त इत्यादि के सम्पर्क में आए, जिनसे उन्हें भरपूर समर्थन प्राप्त हुआ। जब उनकी कविताओं के संग्रह और उनके गीत, उपन्यास और कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे तथा

शनैः शनैः उनके पाठक और प्रशंसक भी बढ़ने लगे। धीरे-धीरे निराला के चारों ओर अनुयायी कवि, विद्यार्थी और उनकी प्रतिभा के गुणग्राही बढ़ने लगे और उनका इलाहाबाद का घर एक प्रकार से साहित्य-केन्द्र बनने लगा, जहाँ प्रायः एक ही विचारों वाले लोगों की मित्रमंडली एकत्र होती थी। इन्हीं दिनों निराला सामयिक कवि सम्मेलनों में भी भाग लेने लगे और देखने वाले बताते हैं कि इन सार्वजनिक सभाओं और कवि सम्मेलनों में उन्हें कितनी व्यापक लोकप्रियता प्राप्त थी।

निराला का क़द ऊँचा, चौड़े-चौड़े विशाल कँधे, शरीर का शक्तिशाली गठन और रोबीले चेहरे वाला व्यक्तित्व था। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें भावुकतापूर्ण थीं और अपने बालों की लटकती लटों, अपने बाह्य स्वरूप और मधुर स्वर से वह श्रोताओं को मंत्रमुग्ध-सा कर देते थे। यद्यपि, इस नवीन काव्यधारा के कवि को प्राचीन रूढ़िवादी विचारधाराओं के साहित्यकारों से वाद-विवाद और संघर्ष में विजय हुई, परन्तु यह विजय पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों में नहीं अपितु गली-कूचों और सार्वजनिक सभाओं में हुई जहाँ उनकी नवीन जीवनदायी नव काव्यधारा का जनता ने व्यापक समर्थन किया।

द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध के काल में कठिनाइयों से पीड़ित निराला इलाहाबाद में ही बसते थे। इन दिनों उनकी कविता और रचनाएँ जनता के अधिक सम्पर्क में आईं, जिनमें उनके पवित्र स्वप्नों और आशाओं की पूरी-पूरी झलक थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद निराला पुनः भारत के प्रगतिशील लेखकों की अग्रिम पंक्तियों में पाए गए। उनकी कविताओं और गीतों के कतिपय संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें इस नागरिक-कवि का स्वर गूँजता सुनाई देता है, जो मातृभूमि के भाग्य के बारे में बड़ा व्याकुल और चिन्तित है। जीवन की कठिनाइयों, विफलताओं और नवीन काव्यधारा के विनिंदकों तथा प्रगतिशील कला के विरोधियों ने सतत संघर्ष से अब उनका स्वास्थ्य गिरने लगा परन्तु बिस्तर के शिकार होते हुए भी निराला ने अपने संग्राम के हथियार नहीं डाले। हिन्दी-काव्य में प्रेम, साधना अथवा उत्साह की एक नव काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में निराला अवतरित हुए। इस काव्यधारा की अनेक विशेषताएँ हैं और इसमें बीसवीं सदी के प्रारम्भ के भारतीय समाज के विरोधाभासों की पूरी-पूरी झलक है।

इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों के काव्य में मध्यकालीन निष्क्रियता और परिपाटी में विरुद्ध स्वतन्त्रता का आह्वान है, भावनाओं की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, दकियानूसी या प्राचीन सामंतवादी आदर्शों और आचार सिद्धांतों पर विजय तथा विचारात्मक सौन्दर्य कलात्मक-आदर्शों की खोज का आह्वान है। इस समय के भारतीय प्रेम धारा के कवियों में निराशावादिता की झलक थी, जो उपनिवेशवादिता और सामंतवादी प्रतिगामिता के विरुद्ध संघर्ष में पराजय और निराशा का ही परिणाम थी। इस समय के कवि अपनी परिस्थितियों की यथार्थता से असंतुष्ट सुन्दरता, प्रेम, शान्ति और सुख के कल्पनामय संसार की खोज में थे अथवा वे अपने को वास्तविक और विषम समस्याओं के हल से भूतकाल की आदर्शवादिता की धुन्ध में तिरोहित करना चाहते थे।

निज परिस्थितियों से असंतुष्ट कवि निराला अपने सृजन मार्ग के प्रारम्भ में ही अपनी कृतियों में जीवन के अभिराम सपनों को साकार करते हैं। जीवन के सुन्दरतम

आदर्श और प्राकृतिक संसार में आनंद और सुन्दरता की खोज करते हैं। प्रकृति का चित्रण करते हुए कवि निराला उसे भावनाओं के रूपों और जीवन के कष्टों से सम्बन्धित कर उसमें मानवीय अनुभूति भर देते हैं। इसके साथ ही प्रकृति के सौन्दर्य से विमुग्ध और विस्तंभित निराला मानवीय उदारत्त, महानता और सुन्दरता का राग गाते हैं; उसके नानाविध पेचीदा और गुह्य आत्मिक विश्व के कपाट खोल देते हैं। प्राचीन भारत के महाकवि कालिदास के काव्य की श्रेष्ठतम रूढ़ियों को पुनरुज्जीवित करते हुए वह मानव की बाह्य सुन्दरता के वर्णन से अपने को सीमित नहीं रखते, अपितु उसकी भावनाओं और दुखों के संसार को भी आर-पार देखने की चेष्टा करते हैं। उदाहरण के तौर पर प्रकृति के नाना रूपों के चित्रण में निराला प्रेम, सौन्दर्य को उसके मध्यकालीन आचार सिद्धान्तों तथा परिस्थितियों के विकृत रूप से उसे स्वतन्त्र रूप में प्रकट करते हैं, जो समानता और पारस्परिक आदान-प्रदान की भावनाओं पर आश्रित है।

अपनी 'जूही की कली' (1916) नामक एक कविता में इस तरुण कवि का आदर्श मध्यकालीन काव्य की नारी का स्वरूप नहीं, जो केवल आसक्ति और विषय-वासना का साधन थी अपितु, वह दो युवा-हृदयों के बीच पारस्परिक अनुराग की मूर्ति है, जो वासंतिक समीर के रूप में सौन्दर्य और शृंगार में अवतरित होती है।

निराला के काव्य में कभी-कभी प्रकृति की मूर्ति तीव्र और कटु सामाजिक विषयों से भी ओत-प्रोत होती है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल राग' (1920) में निराला का आदर्श घनगर्जन और तूफ़ान की पौरुषत्वपूर्ण सुन्दरता है, जो धरा की तपतपाती गर्मी से संतप्त आर्द्रता के लिए तृषितों को मुक्ति और पुनरुज्जीवन प्रदान करता है तथा आतताइयों के हृदय में भय और आतंक का संचार कर देता है–

बार-बार गर्जन है,/वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,/सुन-सुन घोर वज्र-हुँकार।
अशनिपात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत-हत अचल शरीर/
गगनस्पर्शी-स्पर्धाधीर/हँसते हैं छोटे पौधे लघु-भार,/ शस्य अपार।

परन्तु, वास्तविकताओं के विकृत स्वरूपों से दलित अपने सृजन मार्ग में पहले-पहल निराला अपने आस-पास के संसार को समझने में असमर्थ रहते हैं और पुनः सुन्दर, शिवं और आनन्द के आदर्श की प्राप्ति के प्रयत्न में वह प्रकृति से अतीत एक परम शक्ति की ओर झुकते हैं और कल्पना उन्हें एक उन्नत शाश्वत सुन्दरता और शान्ति के विश्व में ले जाती है। अपनी कविता 'कहाँ देश है?' (1924) में एक अलक्षित, अपरिचिता कवि को शाश्वत महासागर की लहरों की तरणि पर आसीन कर एक अदृष्ट देश की ओर ले जाती है, जो सूर्यास्त के अग्नि-प्रभ अरुणिम प्रकाश में कहीं सुदूर विद्यमान है–

'अभी और है कितनी दूर?
दूर तुम्हारा प्यारा देश!'

और कवि अपरिचिता से पूछकर पता लगाता है –

'जहाँ हो गया इस रोदन का शेष,
क्यों सखि! क्या है वहीं तुम्हारा देश?'

तथापि, साहित्य की रीति और परिपाटी के अनुसार सरस्वती देवी की मूर्ति जो अपने

जादू भरे संगीत से हृदय को तरो-ताज़ा कर देती है अथवा दुष्ट-दानव दलनकारी काली की मूर्ति अथवा सृष्टि और संसार के देवता शिव की मूर्ति (कल्पना) जो अपने उन्मुक्त (ताण्डव) नृत्य में अखिल प्राचीनता का समन्वय करती हुई उसका नव-निर्माण और पुनरुज्जीवन करती है, इत्यादि के साथ-साथ अन्य प्राचीन भारतीय पौराणिक कल्पनाओं और गाथाओं से ली देवी-देवताओं के स्वरूप और मूर्तियाँ जिनका कवि ने आश्रय लिया है, सब उनके काव्य-सृजन की विप्लववादिता का ही परिचय देते हैं।

अन्य भारतीय कवियों से भिन्न- जो वर्तमान को सीमित करने के उद्देश्य से ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों की शरण लेते हैं और उन पर आदर्शवादी अतीत लादते हैं, निराला अपनी अनेक कृतियों में भारत की प्राचीन महानता और गौरव का चित्रण करते हैं और उसे निरानन्द वर्तमान की तुलना में उपस्थित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने देशवासियों को पूर्वजों के पौरुषत्व और वीरता से पाठ सीखने के लिए आह्वान कर रहे हैं। अपनी 'दिल्ली' (1924), 'ध्वंस की ओर' (1923) एवं अन्य कविताओं में कवि पूछता है कि भारत का वह प्राचीन गौरव कहाँ है? जैमिनी, पतंजलि और व्यास जैसे ऋषि-मुनियों की मातृभूमि कहाँ है? सब नष्ट हो चुका है, अब ध्वंसावशेष रह गए हैं, जो अविजित, शक्तिशाली महान भारत के मूक साक्षी मात्र खड़े हैं। कवि इन ध्वंसावशेषों के सामने सादर अवनत होता है और उनसे आशीर्वाद और शक्ति की प्रार्थना करता है।

निराला भविष्य को आशा-भरी दृष्टि से देखते हैं और अपनी मातृभूमि के सुख-सौभाग्य के दिनों के लौटने की आशा करते हैं। कवि 'दिल्ली' के अंतिम उपसंहारक पदों में विस्मय के साथ कहते हैं-

भय में आशा के जहाँ/ मिलते थे समाचार,

टपक पड़ता था जहाँ/ आँसुओं का सच्चा प्यार।

राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम के उत्थान के दिनों में निराला ने एक ऐतिहासिक प्रसंग के आधार पर 'शिवाजी का पत्र' (1922) नामक एक कविता लिखी, जो विप्लवी महाराष्ट्र जनता के अधिनायक शिवाजी ने, मुग़ल बादशाह से मिले देशद्रोही महाराज जयसिंह को सम्बोधित कर लिखी थी। अपने समकालीन लोगों को सम्बोधित करते हुए शिवाजी के मुख से कवि कहलाता है–

'शत्रु रक्त से यदि धुल सकते,
मातातन के ये काले लाँछन,
तो सब तेरी शंसा करते,
अजित वीर सब तुझे बताते,
अमर हो जाता तेरा नाम।'

जनता के हितों के लिए आत्मत्याग और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के उच्च-आदर्श ही निराला के काव्य-सृजन के प्रधान साधक और प्रेरक विचार हैं। कवि को अदम्य पौरुषत्वपूर्ण वीरों के उदाहरण और उनकी उदारता अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जिनकी पौराणिक गाथाओं की अथवा मध्यकालीन भक्तिकाल के गणतन्त्रवादी काव्य की साकार मूर्तियाँ कवि निराला को प्रभूत राशि में मिल जाती हैं। उनमें प्रधान भाव यही है कि उदात्त और सदुद्देश्य प्राप्ति के लिए सर्वस्व बलिदान, यहाँ तक कि प्रियतम वस्तु के बलिदान की भी आवश्यकता पड़ती है और यही बात निराला की 'राम की शक्ति पूजा' (1936) नामक कविता में स्पष्ट

होती है। राम रावण के दानव दल पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से भगवती 'महाशक्ति' की अनेक दिन तक आराधना के बाद भी, जब वह देखते हैं कि लक्ष्य समीप है और देवी उनकी ओर किंचित कृपा दृष्टि से देखती हैं तो वह एक और कमल की बलि चढ़ाने की आवश्यकता अनुभव करते हैं, परन्तु जब सब कमल समाप्त हो जाता है तो राम अपना नयन-कमल भेंट करने का संकल्प करते हैं और जैसे ही वे आँख की ओर शरसंधान करते हैं, उनकी पवित्र और हार्दिक अभिलाषा पूर्ण हो जाती है और भगवती 'महाशक्ति' अब उनसे संतुष्ट हो उन्हें रावण के विरुद्ध संग्राम में सहायता का वरदान देती हैं।

निराला की कविता 'तुलसीदास' (1938) में भी निराला का यही प्रधान विचार है कि जनता की सेवा-भावना अन्य सब भावनाओं से उच्चतर है। पत्नी द्वारा शान्त, सुखी गार्हस्थ जीवन बिताने से इंकार करने पर मध्यकाल के ये महान उपदेशक, प्रचारक और महाकवि तुलसीदास अपना जीवन जनता की सेवा के लिए समर्पित कर देते हैं तथा पीड़ित, दलित, निराश जनता को अपने अभिराम जीवनदायक रामकाव्य के द्वारा भवसागर और संसार के सब कष्टों से मुक्ति पाने के लिए नवजीवन की प्रेरणा देते हैं।

1930 के अंत में अनेक भारतीय कवि जिन्होंने कभी कल्पनावादिता का आधार न रखा था, वे भी अपनी भावनाओं को अपनी आस-पास की यथार्थताओं से दृढ़तापूर्वक सम्बन्धित करने की चेष्टा करते हैं और वे अपनी कृतियों में वैयक्तिक और सामाजिक भावनाओं के साथ उनका गठबंधन कर देते हैं। इन्हीं वर्षों में निराला ने लिखा था –

''मैंने' 'मैं' शैली अपनाई
देखा एक दुखी निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय पर
झट उमड़ वेदना आई।'

इन्हीं वर्षों में उनकी प्रसिद्ध कविता 'सरोज-स्मृति' (1935) कवि के निजी वैयक्तिक विषाद और पीड़ा, अपनी कन्या के अकाल निधन की व्यथा और जनता के कष्टों और विषाद से अभिव्यक्त है।

इन वर्षों में सौन्दर्य का आदर्श, प्रकृति की सुन्दरता का ज्ञान, कविता का उद्देश्य और समस्याएँ कवि की आध्यात्मिक अनुभूति और उनके विषाद और पीड़ाओं से उनके आंतरिक-विश्व को पृथक कर देती हैं, जो अधिकाधिक स्पष्टता के साथ सामाजिक स्वरूप में अभिव्यक्त होने लगता है। वह और अधिक सावधानी और सतर्कता से विश्व-निरीक्षण करते हैं और साधारण मानव के जीवन को अधिक गहराई से आर-पार देखने का प्रयत्न करते हैं।

'सुगंध' और 'अनामिका' इत्यादि उनके प्रारम्भिक कविता-संग्रहों में तथा अन्यान्य फुटकर कविताओं में, जिनमें अज्ञानपूर्ण आवश्यकताओं तथा ग़रीब जनता के कष्टों और विषादों का तथ्यपूर्ण वर्णन है। अपनी कविताओं 'भिखारी' और 'ग़रीब' (1921) में कवि, अन्यायपूर्ण सामाजिक संगठन के कारण सर्वसाधारण के दुख-विषादपूर्ण जीवन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। 1930 के दशक के बीच के वर्षों में निराला की कृतियों में इन्हीं भावनाओं का परिपाक होता है। उदाहरण के तौर पर है उनकी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' (1935)। निराला इस बेगारी, ग़रीबों के दुखी जीवन और धनिकों के विलासितापूर्ण जीवन के कलंकित वैषम्य का नाट्यपूर्ण एवं अभिनयपूर्ण चित्र अंकित

करते हैं।

धीरे-धीरे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध सहज विरोध से कवि साम्राज्यवादी दासता और लुंठन के परिणामों से उत्पन्न समाज को निज दासता में बाँधने वालों के विरुद्ध ज्ञानपूर्वक आलोचना की ओर झुकता है और तब उनकी कृतियों में व्यंग्य एक प्रधान अंग बन जाता है।

इस प्रकार 1930 के दशक के बीच से हिन्दी-काव्य की कल्पना काव्यधारा के प्रसिद्ध प्रवर्तक निराला इस धारा की सीमितता और विरोधों पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। अब वह उसके द्वारा कल्पना-निर्मित विश्व को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और 'सर्वसाधारण के धरातल' पर वापस उत्तर, जनता के जीवन की ओर मुड़ने लगते हैं। प्रसिद्ध भारतीय आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं, "निराला की कृतियों के इस तीव्र क्रान्तिकारी काल में गोर्की की कृतियों के परिचय से उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।" इन्हीं वर्षों में निराला ने सर्वसाधारण जनता के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक गद्य-कृतियाँ लिखीं जिनमें 'बिल्लेसुर बकरिहा' बहुत अच्छी है।

निराला के काव्य-सृजन के विकास का महत्वपूर्ण चरण 'कुकुरमुत्ता' नामक कविता है। इस आलंकारिक कविता में जो हिन्दी कविता में प्रगतिशील धारा के विकास का एक स्मारक चिह्न है इस पर विचार की पुष्टि की गई कि निरर्थक फूल गुलाब-जो पूँजीवादी लुंठन और विलासिता का प्रतीक है, समाज के पार्थिव जीवन का यथार्थ स्वामी नहीं, अपितु 'कुकुरमत्ता' है, जो श्रमजीवी समाज का जीवित मूर्त रूप है। इस विचार से 'कुकुरमत्ता' के रूप को कवि निराला उसके अनेक समाजोपयोगी अंगों को (उसकी छतरी, उसकी प्यालानुमा आकृति, तना और मिट्टी में गई जड़ों को) एक कुशल कलाकार के रूप में, उसके रूप को परिवर्द्धित कर उसके पार्थिव स्वरूप का भी चित्रण करते हैं। कवि इस विचार का प्रतिपादन करता है कि निरर्थक बाह्य सौन्दर्य ही नहीं अपितु, जनता को लाभ पहुँचाना तथा उसके जीवन को सुखपूर्ण एवं सुन्दर बनाना ही सौन्दर्य का यथार्थ आदर्श है। निराला की इस कविता की राष्ट्रीयता इस बात में निहित है कि वह इसमें भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या अर्थात् दलित श्रमजीवी वर्ग के अधिकारों का समर्थन तथा पर-श्रमजीवी धनी समाज की कटु आलोचना करते हैं।

इस कविता में कविता का रूप, उसकी भाषा और शैली कवि की इन नवीन भावनाओं और उनके विचारों के अनुकूल है। वह नवीन प्रतिमाएँ बनाते हैं और ऐसे नवीन चित्र अंकित करते हैं, जिनमें अतीत की श्रृंगारिक-भावुकता तथा रहस्यवादी अनभिव्यक्त भावनाओं का लवलेश भी नहीं है।

'कुकुरमुत्ता' में प्रारम्भिक रूढ़ियाँ द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध काल में लिखे आगामी गीतों में और अधिक प्रस्फुटित होती हैं, जिनका उनके 'तरुण पत्र' (1948) कविताओं में भी समावेश है। इन कविताओं की विशिष्टता, वास्तविकता अथवा अयथार्थवादिता तथा तीव्र सामाजिकता की धारा ही इन कविताओं की विशिष्टता है। निराला भारतीय देहाती जीवन के भी जीवित-जागृत चित्र अंकित करते हैं।

इन संग्रहों की अनेक कविताओं में कवि का तीक्ष्ण व्यंग्य स्पष्ट रूप से गूँजता है और इस बात पर ज़ोर देता है कि बहुसंख्यक तुच्छ, साधारण और अर्द्धसाधारण जनता अदृष्ट रहती है और साथ ही कलाकार-कवि

के व्यंग्य-बाण समाज के उन लोगों को ठीक-ठीक निशाना बनाते हैं जिनको लक्ष्य कर छोड़े गए हैं।

इसी काल में, निराला के काव्य-निर्माण में छन्द, काव्य निरूपण का भी बड़ा स्थान है, जो सार्वजनिक गीत और उर्दू कविता के भी विशिष्ट रूप हैं, जिनके द्वारा हिन्दी और उर्दू की कविता जनता के निकट सम्पर्क में आती है।

निराला की अनेक कविताएँ और गीत, जो 1950 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में लिखे गए थे तथा उसके बाद प्रकाशित कविता संग्रह जैसे- 'आराधना', 'पूजा', 'गीत ध्वनि' इत्यादि में समाज के प्रति घोर असंतोष एक प्रधान भावना है, जिसमें करोड़ों की संख्या में जनता ग़रीबी, दलन और कष्टों के लिए सदा के लिए अभिशप्त है, यद्यपि उपनिवेशवादियों द्वारा भारत पर किए घाव अभी धीरे-धीरे भर रहे हैं परन्तु, देश में ऐसे लोग विद्यमान हैं, जिन्हें भोली-भाली सर्वसाधारण जनता के हितों से कोई सरोकार नहीं और जो श्रमजीवी समाज की ग़रीबी और विनाश के मूल्य पर भी सब बुरे तरीक़ों द्वारा कमाई पूँजी से अपने ख़ज़ाने भरना चाहते हैं। इस सबका तथा उनके भयंकर बढ़ते रोग का निराला के पिछले वर्षों की कृतियों पर बड़ा प्रभाव है, जो उनके हृदय में क्रान्तिकारी परिवर्तन की भावनाओं तथा विषाद और चिन्ता को और जागृत कर देती है। वह मानव के सौभाग्य और सुख की प्राप्ति के संघर्ष के लिए नए-नए साधनों की खोज करने लगते हैं जिनमें स्थान-स्थान पर निराशावादिता की भी झलक है। उनके कविता-संग्रह 'पूजा' की ये पंक्तियाँ इसका अच्छा उदाहरण हैं –

'मानव जहाँ बैल-घोड़ा है,
कैसा तन-मन का जोड़ा है?
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
आशा आशा भरे,
लोग देश के हरे,
दीख पड़ता है जहाँ
सभी झूठ है वहाँ,
भूख-प्यास सत्य
ओंठ सूख रहे हैं अरे,
आस कहाँ से बँधे?
साँस कहाँ से सधे?'

इन कविताओं और गीतों में निराला उन लोगों की विशेष रूप से आलोचना करते हैं जो शिक्षा प्राप्त कर अपने देश और अपनी जनता के हितों की उपेक्षा करते हैं तथा जिनका ध्यान केवल मात्र अपने सुख और समृद्धि की ओर ही है। वह उस समाज की कटु निंदा करते हैं, जिसमें ज्ञान और विज्ञान जनता के लूटने वालों के स्वार्थों की सेवा करता है। यहाँ प्रस्तुत हैं उनकी गीत-ध्वनि की कुछ पंक्तियाँ –

'अब शिक्षित रह गए ऐसे,/ जो मित्रता विश्वासहीन हैं,
ग्राम्य वासना साधन रत हैं/ जीवन अंध परिश्रांत है,
विद्या बस उस ओर लगी है,/जनता को मूक-पशु बनाने।'

यहाँ तक कि उनकी प्रारम्भिक कविताओं में निराला का प्रिय 'बरसाती बादल' भी कवि के कष्ट और विषाद को दूर नहीं कर सकता–

'बादल रे, जी तड़पे
किए उपाय सैकड़ों तन के,
मन के चरण, मिले सज्जन के,
व्यर्थ प्रार्थना जैसे अब है,
पंजर पिंजर करके।'

तथापि, इन्हीं पदों के साथ-साथ 'गीत-

ध्वनि' संग्रह में हम वह कविता भी पाते हैं, जिसमें कवि 'बरसाती बादल' को संसार के पुनरुज्जीवन के प्रतीक के रूप में पुनः सम्बोधन करते हैं –

'आओ आओ वारिद वंदन
बरसो सुख, बरसो आनन्दन!
आशिष वायु, गुल्म तृण परसो,
जन जन के प्राणों में सरसो,
दृग अँचल बरसो हे बरसो,
स्वेद-स्वेद के अँगन स्पन्दन।'

कभी-कभी निराला की कविता और गीतों में इस विचार को भी महत्व दिया जाता है कि प्रार्थना और निर्मलता लोगों को कष्ट और पीड़ा के सहने में सहायक होते हैं परन्तु, कवि यह भी जानता है कि करोड़ों भूखी जनता का निरी प्रार्थना द्वारा ही पेट नहीं भरा जा सकता –

'पठित या अपठित वे नर,
देव या गंधर्व, किन्नर,
लाल, पीले, कृष्ण, धूसर,
भजन क्या, भोजन चखा दो।'

निराला की अधिकांश कविताओं में, जो उनके जीवन के पिछले वर्षों में लिखी गई थीं, इस नागरिक कवि का आह्वानपूर्ण उच्च स्वर गरजता-सा दिखता है, जिसमें निज जनता की स्वतन्त्रता और सौभाग्य की विजय में आशा और विश्वास भी झलकता है।

कवि एक नवीन, साहसी और सबल व्यक्ति के रूप में श्रमजीवियों को- सम्बोधन करते हैं, जो जीवन की सब कठिनाइयों और विफलताओं का बोझ अपने कँधों पर सहन कर सकते हैं तथा जनता को सुख-समृद्धि के युद्ध में विजय प्राप्त करा सकते है –

'पथ पर बेमौत न मर,
श्रम कर तू विश्राम कर,
उठा-उठाकर करद हाथ,
दे दे तू वरद हाथ,
जग के इस सजग प्रात
पात-पात किरणें भर
बढ़ा-बढ़ा के तन,
जगा-जगा निश्चेतन,
भगा भीरु जीवन-रण
सर-सर से उमर सुधर
चलते-चलते छटकर
द्रुम की मधु लता उतर
विधुर स्पर्श कर पथ पर
युवा-युवतियों के सर।'

सन् 1959 में इन पंक्तियों के लेखक को भारत के प्रसिद्ध नगर इलाहाबाद (प्रयाग) जाने का अवसर मिला, जो आधुनिक हिन्दी साहित्य का केन्द्र है और एक प्राचीन तीर्थस्थान है। गंगा की निर्मल, पारदर्शक जलधारा के ढलाऊ रेतीले किनारे, त्रिवेणी से कुछ दूर जहाँ गंगा की धवल और यमुना की कृष्ण जलधाराओं का परस्पर संगम होता है, जहाँ हज़ारों यात्री स्नान और अपने धार्मिक कृत्य पूर्ण करते हुए देखे जाते हैं, वहाँ ही अपनी संकरी, टेढ़ी-मेढ़ी गलियों और मार्गों से मिट्टी के बने मकानों, मन्दिरों, प्रार्थनागृहों और छोटे-छोटे व्यापारियों की दुकानों की पंक्तियों के साथ प्रयाग का यह प्राचीन नगर फैला हुआ है। निराला यहाँ ही तीस वर्ष से लगातार निवास कर रहे थे।

मैं अनेक वर्षों से भारत के कवि के काव्य का अध्ययन करता रहा हूँ और चिरकाल से मेरी यह उत्कट अभिलाषा थी कि मैं इस महान व्यक्ति के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करूँ, जिसे उसके देशवासी 'महाकवि' के नाम से पुकारते हैं। मुझे इलाहाबाद में एक दिन ही रहना था। अतः संध्या समय ही मैं अन्य सब कार्यों से छट्टी पाकर नगर की इस

प्राचीन बस्ती की ओर जा सका। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त, रामकुमार वर्मा और गिरिजा कुमार माथुर ने मुझे अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने मुझे पहले ही बता दिया था कि आजकल कवि निराला अपनी भयंकर बीमारी के कारण वर्षों से रोगशैया पर पड़े हैं। उनकी बीमारी पहले से अधिक विषम हो गई है, जिसके कारण वह कभी-कभी बेहोश हो जाते हैं।

देर तक पुराने प्रयाग की तंग, टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भटकने के बाद अंत में हम एक छोटे-से पुराने मकान पर पहुँचे। द्वार पर ही निराला साहित्य समाज के एक नवयुवक सदस्य ने हमारा स्वागत किया। वह हमें शैयाग्रस्त रुग्ण कवि के पास ले गया। हम कमरे में पहुँचे जो दीपक के मन्द, पीले प्रकाश से आलोकित था। पास में एक छोटी-सी तिपाई पर पीतल का एक जलकलश रखा था, बराबर में कुछ पुरानी कुर्सियाँ पड़ी थीं। दीवार के बराबर एक अलमारी में बीस या तीस के करीब पुस्तकें रखी थीं और एक नीची चौड़ी-सी खाट कोने में बिछी थी—बस, ले-देकर कमरे में यही सीधा-सादा सामान। खाट पर अपने बड़े-बड़े हाथों को आड़े रखे और छाती पर सिर ढलकाए एक व्यक्ति बैठा था। यही महाकवि निराला थे।

कवि के चेहरे से परम शान्ति और क्लान्ति टपक रही थी परन्तु जैसे ही उन्होंने अपना उन्नत ललाट और सुन्दर, सुघड़, सघन केश-राशियुक्त ग्रीवा ऊपर उठाकर हमारी ओर देखा, हमारे ऊपर भयंकर रोग-ग्रस्त व्यक्ति का पड़ा पहला प्रभाव सहसा विलुप्त हो गया। उनकी विस्मयपूर्ण और गम्भीर अभिव्यक्तिपूर्ण बड़ी-बड़ी आँखें हमारे ऊपर जादू कर रही थीं और अपनी अदम्य शक्ति तथा तारुण्य से हमारे हृदय को आर-पार बेधती हुई हमें परास्त कर रही थीं।

हमने अभिवादन किया और उनकी शैया के निकट पहुँचे। अभिवादन के उत्तर में उन्होंने सिर हिलाकर हमें कुर्सियों पर बैठने के लिए संकेत किया। हम सब बैठ गए। मैंने कवि निराला को बताया कि पिछले वर्षों में सोवियत संघ में उनका नाम विख्यात हो गया है और उनकी अनेक कृतियों के रूसी भाषा में अनुवाद अनेक संस्करणों में प्रकाशित हुए हैं तथा निकट भविष्य में उनकी दो चुनी हुई गद्य और पद्य कृतियाँ भी प्रकाशित होने वाली हैं। मैंने उन्हें यह भी बताया कि उनके देशवासियों की तरह सोवियत जनता भी भारत के प्रगतिशील साहित्य में उनके योगदान का बड़ा आदर करती है। निराला के स्थिर चेहरे पर मुस्कुराहट की एक लहर दौड़ गई। उनकी रुग्ण शैया पर उनके मित्र और सहयोगी सुमित्रानन्दन पन्त साथ ही बैठ गए जिन्होंने उनके साथ संघर्ष का कठिन मार्ग तय किया था तथा जीवन में नाना प्रकार के कष्ट-अभावों को सहन करते हुए भी भारत में प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया था। सुमित्रानन्दन पन्त ने उनके कंधों पर हाथ रखकर उनसे कहा, "कुछ सुनाओ!"

"मैं तो आजकल बहुत थोड़ा लिखता हूँ।" निराला ने उत्तर में कहा परन्तु, कुछ क्षण में ही उन्होंने अर्द्धनिमीलित नयनों से मन्द-मन्द मधुर स्वर में अपना कविता-पाठ शुरू किया। कविता के शब्दों से मैं समझ गया कि यह 'राम की शक्ति पूजा' में से है। मुझे गिरिजा कुमार माथुर ने बताया कि यह निराला जी की प्रियतम कविता है और वह इसका अपनी मित्रमंडली में प्रायः पाठ किया करते हैं। मैंने देखा कि इससे निरालाजी बिल्कुल

रूपांतरित हो उठे। उन्होंने अभिमान से अपना उन्नत मस्तक उठाया और जब उन्होंने महान पौरुष और उदात्तता के शब्द उच्चारण किए, उनकी आँखें उत्साह से दीप्त हो उठीं।

निरालाजी के इस कविता-पाठ को सुनकर मेरी समझ में आया कि जीवन और संघर्ष की उनकी इच्छा को कोई शक्ति भंग और परास्त नहीं कर सकती।

हमने निरालाजी से विदा ली। भारतीय रीति के अनुसार उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पुनः छाती पर सिर ढलकाकर अपने विचारों में डूब गए।

कुछ समय हुआ, इलाहाबाद से मित्रों ने मुझे कवि निराला की नई कविताएँ भेजीं जो 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। जीवन समर्थक और आशावादिता से लबालब इन दो छोटी-छोटी 'बादल का गीत' नामक कविताओं को प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इनमें निराला का व्यक्तित्व पूर्णतः झलकता है जो रुग्ण और एकाकी जीवन की सब बाधाओं और संकटों के बावजूद लोगों के लिए एक सौभाग्यशाली और आनंददायक जीवन के स्वप्न देख रहे थे, जिनमें 'बादल' अपनी आर्द्रता द्वारा लोगों को विषम-ताप से मुक्ति देता है और उनमें पुनः भविष्य की आशाएँ जगा देता है –

'बरसो मेरे आँगन, बादल
जल-जल से भर दो सर, उत्पल
करो विकंपित अवनी का उर,
भरो आम्र-पल्लव में नव सुर,
रंगो अधर तरुणी के आतुर
सींचो युवक जनों के हृत्।'

निराला की इन पंक्तियों में भय अथवा निराशा नहीं, बल्कि जीवन के यौवन और उल्लास का समीर बह रहा है, देखिए-

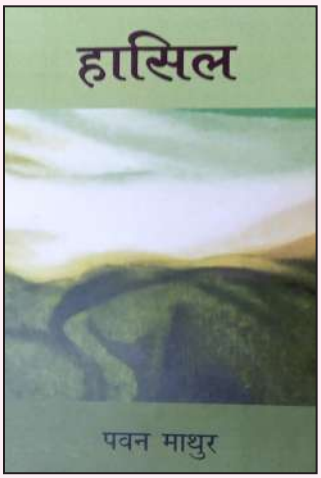
'फिर बेले की कलियाँ आईं,
डालों की अलियाँ मुसकाईं।'

भारत के अनेक विद्वान साहित्यकारों ने निरालाजी की कृतियों पर अनेक मनोरंजनपूर्ण और गम्भीर अन्वेषण किए हैं। उनके साहित्यिक श्रम का मूल्यांकन और आदर करते हुए मेरी अभिलाषा है कि मैं भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार शिवदानसिंह चौहान के शब्दों को दोहराऊँ कि निराला की काव्य-कृति का विशद मूल्यांकन उनके प्रिय मित्र और साहित्यिक साथी भारत के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त ही भली-भाँति कर सके हैं, जिन्होंने अपनी कविता में अनामिका के कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट की है। उसका अ. अहमतोव ने रूसी भाषा में सुन्दर अनुवाद किया है। हम सुमित्रानन्दन पन्त की उक्त कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं–

'छन्द बन्ध ध्रुव तोड़, फोड़ कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत,
गलित ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित,
स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मन्दिर
शिल्पि! बनाया... ज्योति-कलश निज यश का धर चिर....
अमृतपुत्र कवि, यशःकाय, तब जरा मरणजित,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत।' ❑

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

इस पुस्तक की कहानियाँ आज के समय की कहानियाँ हैं– ज़िन्दगी की भागमभाग, कसमसाहट, दरकते सम्बन्धों और अव्याख्येय- अबूझ आपा-धापी को परिभाषित करतीं। कहानी के पात्र हमारे आस-पास रहते और जीते चले आए हैं, पर किसका मन कब कौन-सी करवट ले– ये कहानियाँ इस बिन्दु पर ठहरती हुई-सी कहानियाँ भी हैं।



पुस्तक : हासिल (कहानी-संग्रह)
लेखक : पवन माथुर
प्रकाशक : हंस प्रकाशन, बी-336/1, गली नं.3, दूसरा पुस्ता, सोनिया विहार, नई दिल्ली-110094
पृष्ठ : 160
मूल्य : 495 (हार्डबाउंड)

ज़िन्दगी का जमा जोड़

लम्बे दौर में लिखी गई छपी-अनछपी ग्यारह कहानियों का संग्रह 'हासिल' ज़िन्दगी की भागमभाग, कसमसाहट, दरकते सम्बन्धों और अव्याख्येय- अबूझ आपा-धापी को परिभाषित करती हैं। कहानी के पात्र हमारे आस-पास रहते और जीते चले आए हैं, पर किसका मन कब कौन-सी करवट ले, ये कहानियाँ इस बिन्दु पर ठहरती हुई-सी कहानियाँ भी हैं।

कई कहानियों के केन्द्र में स्त्री, प्रेम, वैषम्य और वैश्विक दृष्टि है, किन्तु ये केवल उन्हीं मुद्दों पर टिकी हुई कहानियाँ नहीं हैं। इनकी कथ्यगत विविधता के अन्य आयाम भी हैं। कहानियों में प्रायः पुरुष पात्रों को नाम नहीं मिले, क्या इसलिए कि ये किसी भी शहर, क़स्बे या देश के अफ़सर, प्रोफ़ेसर या व्यवसायी के रूप में पहचाने जा सकें? उनकी सोच और जीवन शैली का बिम्ब कहीं भी पाया जा सके? और स्त्री पात्रों में पल्लवी, मैरी, शोभा या दीक्षा नाम इसलिए कि ये चरित्र किसी विशेष परिस्थिति की देन हैं और उनके व्यवहार, आचरण और जीवनचर्या को उस परिप्रेक्ष्य में ही रेखांकित किया जा सकता है?

इन कहानियों में दुःखद दाम्पत्य की गहरी रेखाएँ हैं। 'माँ जा रही है' कहानी के केन्द्र में वह माँ है जो लगातार एक न उड़ सकने वाली पतंग उड़ाती रही। 'हासिल' कहानी की पीड़ा में भी एक अनचाहे बोझ तले साँस लेती और अपने होने को होम करती स्त्री बहुत स्पष्ट दिखाई देती है, अपने अस्तित्व के लिए दबे स्वर में पुकारती स्त्री।

'एक और रोज़' कहानी वृद्ध जीवन में बीमार पत्नी के इलाज की भटकन का पूर्ण चित्र है जिन्हें ज़िन्दगी और

मौत के समीकरण ने बहुत कुछ समझा दिया– जीवन-मृत्यु की पतली डोर पर झूल कर बेटी विदा हो गई और अब पत्नी उसी पर झूल रही है। दाम्पत्य की दरारें दिखाती दो कहानियों के बाद संग्रह की यह तीसरी कहानी दाम्पत्य की समझदारी को रचती है।

'पारी' कहानी में आरम्भिक दृश्य के बाद एक नया कथाक्रम जुड़ जाता है जहाँ अफ़सरी ठाटबाट के साथ आलीशान दफ़्तर में बैठा बेटा, छोटे क़स्बे की छोटी अदालत के मुहर्रिर अपने पिता के साथ बीते जीवन की स्मृतियों में खो जाता है।

'ज़िन्दगी की कील' पर टँगी एक बूढ़ी बीमार ज़िन्दगी की बेबसी की कहानी का घटनाक्रम अबूझ घुमाव लेता रहता है। भीतरी-बाहरी संघर्ष में डूबे गृह प्रमुख के सम्मुख रोज़ एक नई परिस्थिति मुठभेड़ के लिए प्रस्तुत हो जाती है।

अपेक्षाकृत लम्बी कहानी 'डोर' घर से भागकर शादी करने वाली लड़की के मनस्ताप की कहानी है जिसे मित्र समझाना चाहते हैं– "माँ के पास जाओ और ढेरों रोओ ..किसी के सामने आप रो सकते हैं, यह बड़ी बात है- वह जगह आत्मविश्वास पैदा करती है।" 'गंतव्यहीन' कहानी एक ऐसी ज़िन्दगी गुज़ारते व्यक्ति का सच है जो 25 रुपये माह की 6 बाय 8 की खोली में रहता है, जहाँ सुकून की न कोई खिड़की थी, न उम्मीद का कोई रोशनदान। ज़िन्दगी की लोहे की छड़ों की बंदिश स्वप्न की किसी नई दुनिया में जाने नहीं देती। सबसे लम्बी कहानी 'गुलाब के फूल' अधिकतर कहानियों की तरह वर्तमान से शुरू हो अतीत की ओर लौटती है, जहाँ पचहत्तर पार करने के बाद लम्बी फ़्लाइट का कष्ट झेलते सज्जन पैंतीस वर्ष पहले की जीवित स्मृति में, न्यूयॉर्क की आपा-धापी में डूबे, धैर्यहीन समाज और नसली अपमान के दंश के पहले साक्षात्कार को देखते हैं। जासूसी कथा का-सा रहस्य बुनती 'तफ़्तीश' कहानी अंत में, 'अर्धसत्य ही सही पर न्यायपालिका में अंधेरगर्दी नहीं है, बेगुनाह अभी भी सुरक्षित हैं' जैसी शब्दावली के साथ आगे बढ़ती है। 'कौन-सा सत्य' कहानी एक ईमानदार, संवेदनशील, अपने काम से काम रखने वाले इंसान के झूठे इल्ज़ाम बर्दाश्त न कर पाने के ऐसे दुष्परिणाम को उजागर करती है जहाँ घटना से आहत पत्नी का धीरे-धीरे मरना और पति द्वारा उन्हें मरने देना ही जीवन की त्रासदी थी।

संग्रह के अंत में आए 'एक ज़ख़्मी परिंदा' शीर्षक को स्वयं लेखक 'कहानीनुमा-आलेख' कहते हुए इसमें दो भिन्न विधाओं की सीमा रेखाओं को मिटाने को रेखांकित करते हैं। आलेख का प्रारूप कहानी है जबकि वह है चिन्तक कथाकार देवेन्द्र इस्सर की कृतियों में मौजूद मूल्यबोध का विश्लेषण।

लेखक पवन माथुर विज्ञान से संलग्नता के बावजूद कला और साहित्य से हमेशा जुड़े रहे हैं। इन कहानियों के सूत्र बारीकी से पढ़ने पर ही हाथ लगते हैं। यदि हमने कुछ 'मिस' किया तो कहानी की समझ में बदलाव की पूरी सम्भावना रहती है। ये घटनाबहुल कहानियाँ बहुत डूबकर वातावरण निर्मित करती हैं। इस क्रम में लम्बे-लम्बे वाक्य चार-पाँच पंक्तियों तक फैल जाते हैं किन्तु सुव्यवस्थित ढंग से अपनी बात कहने के शऊर के साथ कहानी आगे बढ़ती है, अनावश्यक भटकाव को कोई स्थान न देकर, दो टूक बात कहती कहानियाँ त्वरित चलती हैं।

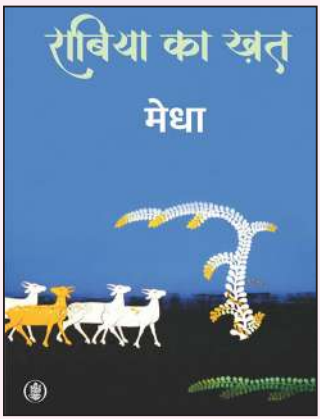
आरम्भ में जो भाषा अपने दृश्य निर्माण में पुनरावृत्ति-सी लग रही थी, सहसा आगामी कहानियों में सध कर आम बोलचाल की भाषा की निकटता पा लेती है। ❑

समीक्षक : विजया सती

ई-मेल : vijayasatijuly1@gmail.com

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

एक निर्मम और उपभोगवादी यथार्थ के समय में यह कविता-संग्रह तमाम प्रतिकूलताओं के बीच जीवन में प्रेम को उम्मीद की किरण के रूप में अपनी जगह बनाने का सार्थक प्रयास करता है। इस कविता-संग्रह में स्त्री कविता की अंतर्वस्तु और शिल्प के एक स्वाधीन रूप को बेशक देखा जा सकता है जिसमें प्रेम के गहरे मौन को भिन्न धरातल पर नए स्वर में सुना जा सकता है।



पुस्तक : राबिया का ख़त
कवयित्री : मेधा
प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जगतपुरी, दिल्ली-110051
पृष्ठ : 206
मूल्य : 299

स्त्री कविता में आत्मा का राग

समकालीन हिन्दी की स्त्री कविता के परिदृश्य में युवा कवयित्री मेधा एक मौलिक स्वर और सम्भावनाशील उपस्थिति के रूप में उभरी हैं। उनका पहला कविता-संग्रह 'राबिया का ख़त' की कविताएँ लीक से अलग एक ताज़गीपूर्ण संवेदना के साथ ही स्त्री की वैचारिक चेतना के उत्थान की भी गवाही देती हैं। जब स्त्री मन की भावनाएँ चैतन्य होकर अपने उत्कर्ष को पहुँचती हैं, तब बोध के ऐसे ही क्षणों में जैसे इन कविताओं का जन्म होता है। इस संग्रह में संकलित लगभग सौ कविताओं में जीवन-जगत का यथार्थ इसलिए भी वृहत्तर आयाम पा जाता है क्योंकि एक दार्शनिक स्थापत्य की छाया में ये आत्मा के राग की कविताएँ हैं। प्रेम, जीवन, प्रकृति और मानवीय सम्बन्ध भी यहाँ कवयित्री के भीतर के आंतरिक संगीत से उठते हुए अनुभवों के बिम्ब बनकर आते हैं। यह स्त्री के प्रेम का आत्मीय पाठ है और कविताओं में जो 'मैं' है वह दुनिया की तमाम स्त्रियों के 'मैं' का प्रतीक है–

'पुरुष के पास
अहंकार का तम था
वर्चस्व की ताक़त
उसने प्रेम के नाम पर
वही दिया, जो उसके पास था।'

इन कविताओं में कहीं-कहीं कवयित्री मेधा का यह 'मैं' सूफ़ियाना रंग में डूबा है जिसमें स्त्री की आत्मा की आवाज़ है और जैसे नदियों की तरलता और जीवन का गहरा अर्थ है- 'चाँद की मटकी/ माथे पर रख/ एक रोज़ निकल पड़ूँगी मैं/ आसमान की अनंत यात्रा पर/ और उस घड़ी/ तुम्हारे रोकने से भी/ रुक न सकूँगी/ कि मेरे भीतर/ मैं ही नहीं/ उर्मिला/ यशोधरा और रत्ना भी रहती हैं/ और इन सबकी/ अधूरी यात्राएँ पूरी होने को/ मचल रही हैं मेरे भीतर।'

इसी तरह कुछ और कविताएँ जो स्त्री की साझी आत्मीयता के दुःखों और उनसे मुक्ति से जुड़ी हों अथवा अन्य बहिर्मुखी कविताएँ भी अपने उत्कट विडम्बनाबोध के कारण अलग से आलोकित होती हैं परन्तु इनकी चेतना का वास्तविक वैभव देखना हो तो प्रकृति और प्रेम को निवेदित कविताओं से एक अलग तरह का अंतःसंगीत फूटता है। जैसे शीर्षक कविता 'राबिया का ख़त' में प्रेम की यह गहराई और व्यापकता एक अलग ही भावभूमि पर घटित होती है- 'तुम्हारा मौन मेरी सामर्थ्य है/ वह भर रहा मुझमें/ अदम्य साहस/ रच रहा मेरे भीतर/ एक ऐसी स्त्री/ जो लिख रही है/ प्रेम की निराली कथा/ मजनू से लैला/ शीरी से फ़रहाद मिलकर/ गा रहे हैं/ कबीर के सबद/ नल-दमंयती के प्रेम से अभिभूत/ मौलाना रूमी रच रहे हैं अपना कलाम/ राबिया भी कल रात/ मेरे सिरहाने छोड़ गई एक ख़त/ एक रोज़ ऐसा भी आएगा/ रह नहीं जाएगा/ कहीं कोई फ़र्क़/ इश्क़-हक़ीक़ी और इश्क़ मजाज़ी में कि/ जैसे ललद्य् ने 'हर में हर को पाया'/ मेरी इस प्रेम कहानी में/ तुम सब में घुल रहे हो/ तुम्हारे प्रेम में/ मेरा अस्तित्व बन गया/ अनंत आसमान।'

इन कविताओं में कवयित्री के पास जीवन के विभिन्न रंगों को देखने की, उन तक पहुँचने की जो अनूठी ऐंद्रिय संवेदना है उसने इन कविताओं को अनोखे दृश्य, चित्र और बिम्बों के सौन्दर्य के भाषिक शिल्प से भी दृष्टि सम्पन्न बनाया है। कविता के मूल स्वभाव के अनुरूप कम शब्दों में अधिकतम अर्थ व्यंजना का जो शिल्प कवयित्री ने यहाँ साध लिया है, उसके कारण पाठकों के अंतर्मन में ये कविताएँ ओस की बूँदों की तरह जैसे पत्तियों की आत्मा में एक मधुर नमी की तरह फैल जाती हैं।

इस कविता-संग्रह के भीतर से पाठक स्त्री-पुरुष प्रेम के स्थूल रूप से आगे एक ऐसे आत्मिक और विलक्षण अनुभव में प्रवेश करता है जिसकी उपस्थिति समकालीन स्त्री कविता के परिसर में बहुत नगण्य है। ये कविताएँ बहुत-सी छूटी हुई जगहों और अनकही आवाज़ों को दर्ज करती हैं जो मानवीय अस्तित्व के लिए एक सुकून और अवकाश की तरह यहाँ अपना बसेरा कर लेती हैं।

इस कविता-संग्रह में स्त्री कविता की अंतर्वस्तु और शिल्प के एक स्वाधीन रूप को बेशक देखा जा सकता है जिसमें प्रेम के गहरे मौन को भिन्न धरातल पर नए स्वर में सुना जा सकता है। ❑

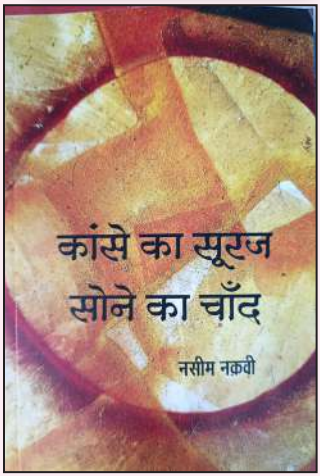
समीक्षक : मीना बुद्धिराजा

ई-मेल : meenabudhiraja67@gmail.com



पुस्तक को क्यों पढ़ें...

पुस्तक की कहानियाँ समीचीन सन्दर्भों से सरोकार रखती हैं। यह एक अनुभवी पत्रकार का पहला कहानी-संग्रह है। कहानियाँ आज के डिजिटल अंदाज़-ए-बयाँ से मेल खाती हैं। कहानियों में यथार्थपरकता है और युवाओं की समस्याओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती हैं। कहानियाँ लघुकथा या उससे थोड़ी-सी अधिक वर्णन लिए रोचकता के पुट से लबरेज़ हैं और आज के पाठक की पढ़ने की आदत से मेल खाती हैं।



पुस्तक : काँसे का सूरज सोने का चाँद
लेखक : नसीम नक़वी
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर (राजस्थान)
पृष्ठ : 96
मूल्य : 150

रोचकता के पुट से लबरेज़ कहानियाँ

कहानी लिखना या क़िस्सागोई एक बेहद महत्वपूर्ण और सशक्त साहित्यिक विधा है। कहानी या लघु कहानी में अधिक कलात्मकता और सृजनात्मकता की आवश्यकता रहती है। इसमें कोई संदेश या औचित्यपूर्ण या तर्कसंगत कहानी-शिल्प या अंत होना चाहिए। रोचकता और पाठक का कौतूहल बनाए रखना इस विधा की ख़ासियत है।

समीक्षित पुस्तक 'काँसे का सूरज सोने का चाँद' लेखक का पहला प्रयास है। किसी भी युवा के प्रथम प्रयास को सबसे पहले प्रकाशन संस्थान के विभिन्न विभागों का सहयोग व्यवसायिक स्तर पर मिले तो पुस्तक की पठनीयता और बेहतर तथा प्रभावी हो जाती है। आज के डिजिटल होते भारत के पाठक की इसी प्राथमिकता को समझा जाना चाहिए कि उसे सारगर्भित संक्षिप्त पर रोचक कथा सामग्री मिलनी ही चाहिए।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में कुल पन्द्रह कहानियाँ हैं, जिनमें कुछ लघु कहानियाँ भी हैं। लेखक ने जिन्हें अपने पत्रकारिता कार्य के दौरान विभिन्न संस्कृतियों,

स्थानों और लोगों से मिलकर, बातचीत कर, फिर अपने अहसास और अनुभव को मिलाकर काग़ज़ पर उतारा है।

कहानी-संग्रह की मुख पृष्ठ कहानी जो शीर्षक भी है, पुरुष की दंभी मानसिकता का परिचय देती हुई नायिका के समाजशास्त्र अध्ययन की परिपक्वता को दर्शाती है। होममेकर की भूमिका निभाती पढ़ी-लिखी पत्नी और विदेश में कामयाब अहंकारी पति का कथानक अच्छा रहा परन्तु उसका अंत थोड़े धैर्य से उद्देश्यपूर्ण हो सकता था। 'गँवार' कहानी एक सुन्दर-सा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है उन लोगों का जो थोड़ा-बहुत अनुभव प्राप्त कर उसे अपने से कमतर लोगों पर थोपते हैं। कहानी 'रुस्तम' का कथानक, नायक, कहानी का प्रवाह और अंत बहुत ही अच्छा हुआ है जिससे राजनीति की ओर आने वाले युवाओं के लिए जनसेवा का संदेश मिलता है।

स्त्री को केन्द्र में रखकर भी कुछ कहानियाँ हैं जैसे 'अब इतना तो...', 'आख़िरी कहानी', 'फ़ेसबुक', 'भेड़िए'। इसमें कहानी 'अब इतना तो...' आज के युवक और युवतियों की प्राथमिकताओं और भौतिक मानसिकता की पड़ताल करती है। आख़िरी कहानी में स्त्री-जीवन के सोपानों यथा शैशव, बालपन, कैशौर्य, यौवन के साथ-साथ स्त्री की स्त्री के प्रति अजीब-ओ-ग़रीब परन्तु सत्यता से लैस मानसिकता को भी प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि 'भेड़िए' कहानी जो कि स्त्री के दैहिक शोषण और दुष्कर्म की समस्या को सामने रखती है परन्तु कहानी बिखरी-बिखरी-सी है जो पाठक पर प्रभाव छोड़ने में पूरी तरह समर्थ नहीं है। कहानियाँ 'मुन्नू मियाँ' और 'तौक' (लोहे की गोल हँसुली जो कि अपराधियों के गले में डाली जाती है) अपना प्रभाव छोड़ती हैं और 'जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे' की कहावत को चरितार्थ करती हैं। 'पुरानी छत' कहानी आज के युवाओं की मानसिकता को बताती है। भौतिक सुख-सुविधाओं को इकट्ठा करते और जीवन के आनंद और सहज गति से उतर पर कटाक्ष करती हुई रचना है। 'रफ़ूगर' कहानी उद्देश्यपूर्ण हो सकती थी लेकिन यह अच्छा प्लॉट कहानी-शिल्प शैथिल्य का शिकार हो गई। 'उल्टी नाव' कहानी आज के युवाओं और विशेष रूप से ग्रामीण या फिर टियर एक और दो शहरों की सोच तथा महानगरों की संस्कृति को सही मायनों में बयाँ करती है।

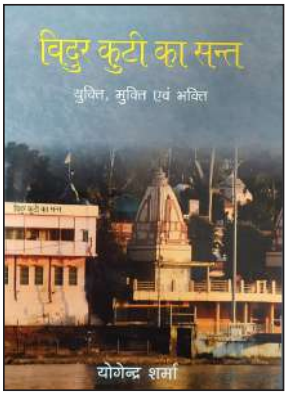
पुस्तक में उर्दू के कठिन शब्द काफ़ी हैं, बेहतर होता कि उनके हिन्दी में सामान्य अर्थ दिए जाते। एक दो स्थान पर प्रूफ़ रीडिंग की कमी भी नज़र आती है जिसे प्रकाशक द्वारा दुरुस्त किया जा सकता था। ❑

समीक्षक : सूर्यकांत शर्मा

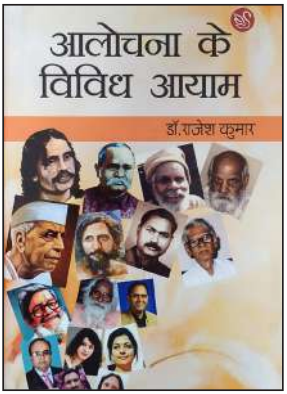
ई-मेल : suryakant06@gmail.com

पुस्तक आजकल

पुस्तकें मिलीं



पुस्तक : विदुर कुटी का सन्त (उपन्यास)
लेखक : योगेन्द्र शर्मा
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 248; **मूल्य :** 650 रुपये



पुस्तक : आलोचना के विविध आयाम
लेखक : राजेश कुमार
प्रकाशक : श्वेत वर्णा प्रकाशन, फ़्लैट नं. 232, बी-1, लोकनायक पुरम, नई दिल्ली-110041
पृष्ठ : 238; **मूल्य :** 399 रुपये



पुस्तक : लघुकथा में प्रयोग
सम्पादक : अशोक भाटिया
प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, लेन सं.1ई, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
पृष्ठ : 208; **मूल्य :** 300 रुपये

पुस्तक : हवा का झोंका थी वह (कहानी-संग्रह)
लेखिका : अनिता रश्मि
प्रकाशक : विद्या विहार, 19-सन्त विहार, गली नं.2, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 152; **मूल्य :** 300 रुपये

पुस्तक : जब थम गई दुनिया
लेखक : सुजीत वर्मा
प्रकाशक : सर्वभाषा प्रकाशन, जे.-49, गली नं. 38, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
पृष्ठ : 168; **मूल्य :** 250 रुपये

पुस्तक : शम अ-ए-फ़रोज़ाँ (ग़ज़ल-संग्रह)
लेखक : शमा फ़िरोज़
प्रकाशक : गुफ़्तगू पब्लिकेशन, 123ए/1, हरवारा, धूमनगंज, प्रयागराज-211015 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 112; **मूल्य :** 200 रुपये

पुस्तक : कहना शेष है (कविता-संग्रह)
लेखक : अरुण शेखर
प्रकाशक : इण्डिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 104; **मूल्य :** 200 रुपये

पुस्तक : ख़ूबसूरत मोड़ (कहानी-संग्रह)
लेखक : राम नगीना मौर्य
प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, महाराजापुरम, केसरी खेड़ा, रेलवे क्रॉसिंग के पास, कृष्णा नगर, लखनऊ-226001 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 160; **मूल्य :** 265 रुपये

पुस्तक : यथार्थ (कविता-संग्रह)
लेखक : सुबोध मिश्र
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 120; **मूल्य :** 300 रुपये (हार्डबाउंड)

• पश्चिम बंगाल का राष्ट्रीय लघुकथा उत्सव

कोलकाता यूँ तो बंगाल की राजधानी है, लेकिन साहित्य, संस्कृति की गंगा का प्रवाह यहाँ सालभर होता रहता है और दिसम्बर का महीना तो पूरे उफान पर रहता है, इसीलिए तो इसे पूरे देश की सांस्कृतिक राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। उसी उफान में इस साल पहली बार पश्चिम बंगाल के सूचना एवं संस्कृति विभाग के अंतर्गत पश्चिमबंग हिन्दी अकादमी ने आयोजित किया राष्ट्रीय लघुकथा उत्सव-2023, जिसमें देश के प्रतिष्ठित लघुकथाकार उपस्थित हुए, वहीं बंगाल के भी अधिकतर लघुकथाकार शामिल हुए। उपस्थित होने वाले लघुकथाकारों में अशोक भाटिया, कान्ता सिंह, सिद्धेश्वर, मार्टिन जॉन, रविशंकर सिंह, पंकज साहा, पूरन सिंह, सेराज ख़ान बातिश, जसबीर चावला, शिखर चन्द जैन, विद्या भंडारी, कुँवर वीर सिंह मार्तण्ड, रावेल पुष्प, पूनम आनन्द, श्यामल भट्टाचार्य, तृष्णा बसाक, दिनेश वढेरा, अशोक झा, विनय भूषण ठाकुर आदि शामिल थे।

कार्यक्रम के प्रथम सत्र में भोपाल की कान्ता राय ने '21वीं शताब्दी में लघुकथा से अपेक्षाएँ' में कहा कि सोशल मीडिया ने लघुकथा को एक मुक़ाम तक अवश्य पहुँचाया है, किन्तु अधकचरी रचनाओं से हटकर, श्रेष्ठ रचनाओं को चयन करना ही हमारा उत्तरदायित्व है। 21वीं शताब्दी में ढेर सारी नई सम्भावना हमें दिखती है।

लघुकथाकार अशोक भाटिया ने 'हिन्दी लघुकथा : उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ' विषय पर बोलते हुए बताया कि किस प्रकार लघुकथा के सामाजिक और साहित्यिक हस्तक्षेप बढ़ने के साथ उसकी स्वीकार्यता बढ़ी है। इसके अलावा उन्होंने 'पंजाबी मिन्नी कहानी' के विकास के पीछे गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी, विशेष रूप से गुरु नानक देव और गुरु गोविंद सिंह की संकीर्णता-विरोधी सोच के दूरगामी प्रभाव का भी उल्लेख किया। मिन्नी कहानी के विकास के चरणों का ज़िक्र कर



उसमें 'मिन्नी' पत्रिका की केन्द्रीय भूमिका और प्रमुख लेखकों के मूल स्वर पर प्रकाश डाला।

लघुकथाकार सिद्धेश्वर ने कहा कि आज साहित्य की विविध विधाओं के बीच लघुकथाओं का सामाजिक मूल्यांकन भी होने लगा है। हमारे देश के विभिन्न भाषाओं में ख़ासकर हिन्दी में लघुकथाकारों ने जमकर सृजन किया है। इसलिए आज साहित्य की विविध विधाओं के बीच लघुकथा का सामाजिक मूल्यांकन भी होने लगा है। साहित्य की जो भी विधा समाज को अपने भीतर समावेश कर लेती है, वह निश्चित रूप से सिर्फ़ समाज के लिए उपयोगी ही नहीं बल्कि कालजयी रचना बन जाती है।

रचना सरन के संचालन में हुए इस सम्मेलन के दूसरे दिन भारत की चार अलग-अलग भाषाओं में लिखी जा रही लघुकथाओं पर भी चर्चा हुई जिनमें शामिल थीं बांग्ला, पंजाबी, गुजराती तथा मैथिली। इन सबके साथ ही रंगकर्मी उमा झुनझुनवाला के निर्देशन में कुछ चुनिंदा लघुकथाओं का अभिनयात्मक पाठ भी हुआ, जिसे दर्शकों की भरपूर सराहना मिली।

प्रस्तुति : बीना गुप्ता

ई-मेल : beenagupta@gmail.com

• साहित्य और संस्कृति का महाकुंभ 'विश्व रंग'

साहित्य, संस्कृति और कलाओं की सजृनशील दुनिया को अपने समय में देखने-परखने और उसके प्रति रुचि-जिज्ञासा और उत्साह का नया परिवेश रचने की उत्साही आकांक्षा है 'विश्व रंग'। उन सरोकारों से जुड़ने की मंशा जो अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में मानवीय जीवन और जगत का बहुरंगी फलक रचते रहे हैं।

भोपाल की ज़मीन पर अफ़सानों, बहस-मुबाहिसों तथा अदब और तहज़ीब की रंगो-महक के बेहिसाब सिलसिले का एक दिलचस्प मंज़र रोशन हुआ। 'विश्व रंग' का ताना-बाना 16 से 24 दिसम्बर, 2023 तक सजा।

यह हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच वैचारिक संवाद तथा सांस्कृतिक आपसदारी का विराट समागम था। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय भोपाल की पहल पर 'टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र' तथा 'वनमाली सृजन पीठ' के मुख्य संयोजन में परिकल्पित इस अंतरराष्ट्रीय साहित्य तथा कला महोत्सव में भारत सहित दुनिया के पचास देशों के पाँच सौ से अधिक प्रतिनिधि हस्ताक्षर पधारे। लगभग पचास सत्रों के आस-पास संयोजित विश्व कुंभ में साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, सिनेमा, पत्रकारिता, पर्यावरण सहित अनेक विषय लिए गए।

हिन्दी व भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के कार्य अनेक आयामों में हुए। पारम्परिक कलाओं को पहचाना व सम्मानित किया गया। 'विश्व रंग' के इस पाँचवें आयोजन में सहभागिता करके गर्व और हर्ष होना सहज स्वाभाविक है।

हम अपने देश की भाषाओं, साहित्य और कलाओं का कितना सम्मान करते हैं, 'विश्व रंग' का यह श्रम साध्य भव्य समारोह आश्वस्त करता है, आशा जगाता है और इसमें सहभागिता करने का अवसर मिल जाए तो गर्व भी होता है।

प्रस्तुति : निर्मला डोसी

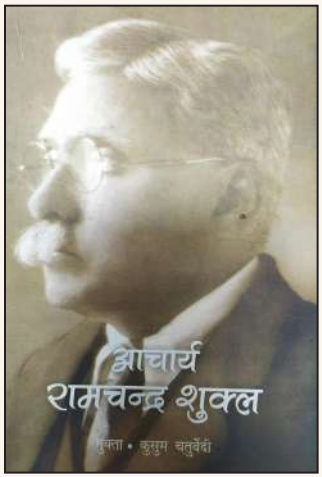
ई-मेल : nirmaladoshi1953@gmail.com

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

सुविख्यात समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के उन मनीषियों में से हैं जिन्होंने हिन्दी के बहुमुखी विकास में अमूल्य योगदान दिया। निबन्ध, समीक्षा, समालोचना के क्षेत्र में उनकी अपूर्व देन आज भी एक निकष के रूप में स्थापित है। हिन्दी साहित्य में उनका मूल्यांकन सहज स्वीकार किया गया है। साहित्य का इतिहास लिखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी को फलने-फूलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उनके जीवन, रचना-संसार, बहुआयामी व्यक्तित्व पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशन विभाग ने 2007 में 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' नाम से प्रकाशित की थी जिसे लिखा है मुक्ता और कुसुम चतुर्वेदी ने। 2017 में इसका द्वितीय संस्करण छपकर आया। कुसुम चतुर्वेदी आचार्य शुक्ल की पौत्री और मुक्ता प्रपौत्री हैं। कुसुम चतुर्वेदी का स्वर्गवास हो चुका है। अतः दूसरे संस्करण की भूमिका मुक्ताजी ने लिखी है जिसमें उन्होंने उन बातों का ज़िक्र किया है जो इस संस्करण में शामिल हैं। अध्याय वही पाँच हैं यथा-'पारिवारिक पृष्ठभूमि', 'प्रतिभा का स्फुटन और विकास', 'रचना-संसार : विहंगम दृष्टि', 'बहुआयामी व्यक्तित्व' तथा 'रचनात्मक अवदान'। 'पारिवारिक पृष्ठभूमि' अध्याय का आरम्भ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 1924 में लिखे चौदह पंक्तियों के एक छन्द से होता है– 'हृदय, क्यों लाद लिया यह भार/किसी देश की, किसी काल की छाया का भंडार/कहाँ लिए जाता है मुझको यह



पुस्तक : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
लेखिका : मुक्ता • कुसुम चतुर्वेदी
पृष्ठ : 278
मूल्य : 245

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें
वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

जीवन विस्तार'। पहली ही पंक्ति से आचार्य शुक्ल के जीवन विस्तार का संकेत मिल जाता है। 'शिशु जीवन की पहली धार अगौना के दलित-पिछड़े समुदाय के क्रोड़ से निकली। हज़ारों क़िस्म के फूलों से संचित अमित अपार मधु लेप से भीगते-महकते, अगौना गाँव की ग़रीबी और दीनता के बीच बिताए उनके साढ़े छह वर्ष के जीवन ने सातवाँ वर्ष राठ में पूरा किया। रामचन्द्र का जीवन आगे बढ़ा पर प्रथम उमड़ी जीवनधार का अस्तित्व साथ-साथ चलता रहा। पाठक के मन में शुक्लजी के प्रारम्भिक जीवन के बारे में और जानने की उत्सुकता जगती जाती है। पचास पृष्ठों से अधिक में शुक्लजी के पारिवारिक जीवन और बचपन का रोचक वर्णन है। यही रोचकता आगे के अध्यायों में भी बनी रहती है। 'बहुआयामी व्यक्तित्व' अध्याय में शुक्लजी के रचना-संसार के इतर उनकी निजी दुनिया को पाठकों के सामने रखा गया है। स्वयं, पत्नी और बच्चों के जीवन के कई उतार-चढ़ावों से शुक्लजी को और नज़दीक से जानने और समझने में सहायता मिलती है।

पुस्तक में जितनी भी जानकारियाँ हैं वे प्रामाणिक हैं। सभी तथ्यों को पाठकों के समक्ष बड़ी ईमानदारी से रख दिया गया है। आचार्य शुक्ल के बारे में उनके समकालीन रचनाकारों का व्यवहार कैसा था और आचार्य उन सभी के बारे में कैसा सोचते थे, ऐसी ही दुर्लभ जानकारियाँ तथ्यों और पत्रों के माध्यम से एक ही पुस्तक में हासिल है जो पाठकों, नए रचनाकारों और शोधार्थियों के लिए उस दौर के रचनाकर्म को समझने के साथ ही उसकी पड़ताल करने में भी सहायक सिद्ध होंगी। ❑

प्रस्तुति : जयसिंह

लेखकों से

- कृपया मौलिक अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना वर्ड फ़ारमेट में सम्पादन योग्य हो तथा चित्रों/फ़ोटो के साथ हो तो अच्छा रहेगा। चित्र/फोटो न्यूनतम 300 डीपीआई होनी चाहिए।
- रचनाओं में शब्दों की संख्या सीमित रखें, अधिकतम 2000 शब्द तक। इससे कम हो तो बेहतर रहेगा। रचना पूर्व में मुद्रण, इलैक्ट्रानिक या डिजिटल माध्यम में प्रकाशित या प्रसारित नहीं होनी चाहिए।
- रचनाओं की स्वीकृति की सूचना 45 दिन के अंदर न मिले तो उसे अस्वीकृत मान लें।
- रचना के साथ अपना पूरा पता, मोबाइल नम्बर, ईमेल, चित्र और संक्षिप्त परिचय अवश्य भेजें।
- डाक द्वारा भेजी गई रचनाएँ अस्वीकृत होने पर लौटाना संभव नहीं हो पाएगा। कृपया अपनी रचनाओं की प्रतिलिपि अपने साथ रखें ताकि आप उसका/उनका अन्यत्र उपयोग कर सकें।

ईमेल : ajkalhindi@gmail.com

प्रकाशन विभाग के विभिन्न आयोजन



प्रयागराज पुस्तक मेला में प्रकाशन विभाग की पुस्तकों के बीच स्कूली बच्चे



47वें चेन्नई पुस्तक मेला में प्रकाशन विभाग की भागीदारी



असम पुस्तक मेला के दौरान प्रकाशन विभाग के स्टॉल पर सुविख्यात पत्रकार और 'प्रतिदिन टाइम्स' के सलाहकार सम्पादक मृणाल तालुकदार विचार-विमर्श करते हुए



असम पुस्तक मेला में प्रकाशन विभाग के स्टॉल पर पाठक



पुणे पुस्तक मेला में पाठकों को आकर्षित करती प्रकाशन विभाग की पुस्तकें



योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

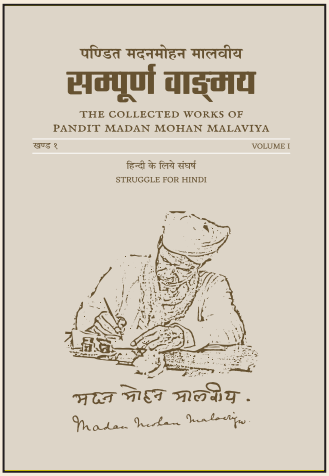
पुस्तक आजकल



कवर 2 से आगे...

लगभग चार हज़ार पृष्ठों एवं 11 खण्डों में संकलित दो भाषाओं (अंग्रेज़ी और हिन्दी) में प्रकाशित यह कृति, देश के हर कोने से एकत्र किए गए पण्डित मदनमोहन मालवीय के लेखों और भाषणों का संग्रह है। इन खण्डों में उनके ज्ञापन सहित अप्रकाशित पत्र, लेख और भाषण; वर्ष 1907 में उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए हिन्दी साप्ताहिक 'अभ्युदय' की सम्पादकीय सामग्री; समय-समय पर उनके द्वारा लिखे गए लेख, पैम्फ़लेट और पुस्तिकाएँ; 1903 और 1910 के बीच आगरा एवं अवध के संयुक्त प्रान्त की विधान परिषद में दिए गए सभी भाषण; रॉयल कमीशन के समक्ष दिए गए बयान; 1910 और 1920 के बीच इंपीरियल विधान परिषद में विधेयकों की प्रस्तुति के दौरान दिए गए भाषण; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना से पहले और बाद में लिखे गए पत्र, लेख और भाषण; और 1923 और 1925 के बीच उनके द्वारा लिखी गई एक डायरी शामिल है। पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा लिखित दस्तावेज़ों और उनके द्वारा बोले गए कथनों पर शोध और संकलन का कार्य महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय के आदर्शों और मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित संस्था महामना मालवीय मिशन द्वारा किया गया था। प्रख्यात पत्रकार रामबहादुर राय के नेतृत्व में मिशन की एक समर्पित टीम ने भाषा और पाठ में बदलाव किए बिना पण्डित मदनमोहन मालवीय के मूल साहित्य पर काम किया है। भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग ने इन पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

(स्रोत : पत्र सूचना कार्यालय)



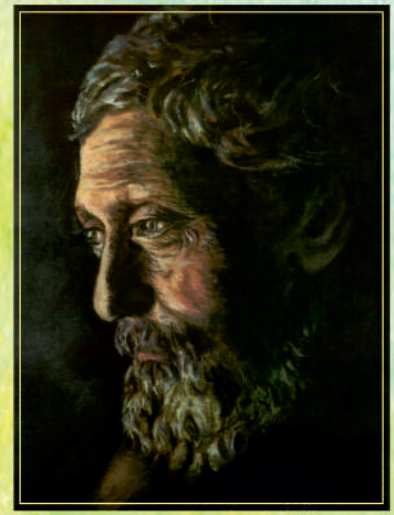
पुस्तक : पण्डित मदनमोहन मालवीय सम्पूर्ण वाङ्मय (11 खण्डों में)

मूल्य : 3375 रुपये

सम्पूर्ण वाङ्मय ख़रीदने के लिए क्यू आर कोड स्कैन करें

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

डाक तार पंजीयन सं. डीएल(एस)-05/3222/2024-26
Magazine Post No. DL(DS)-42/MP/2022-23-24
U(DN)-49/2021-23 Licenced to post without pre-payment at RMS Delhi
● 10 जनवरी 2024 को प्रकाशित ● 21-22 जनवरी 2024 को डाक द्वारा जारी
ISSN: 0971-8478
आरएनआई : 701/57
● वार्षिक मूल्य : ₹ 230



छायावाद के प्रमुख स्तम्भ

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

(21 फ़रवरी, 1897 - 15 अक्तूबर, 1961)

प्रकाशक व मुद्रक अनुपमा भटनागर, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा संदीप प्रेस, सी-105/2, इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-1, नारायणा, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन